परिप्रेक्ष्य

शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

वर्ष 20, अंक 3, दिसंबर 2013

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

500 प्रतियां

© राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, 2013
(भारत सरकार द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम 1956 की धारा 3 के अंतर्गत घोषित)

इस पत्रिका का प्रकाशन प्रति वर्ष अप्रैल, अगस्त और दिसंबर माह में किया जाता है। इसकी प्रतियां चुनिंदा और इच्छुक व्यक्तियों तथा संस्थानों को नि:शुल्क भेजी जाती हैं। यह न्यूपा की वेबसाइट: www.nuepa.org पर नि:शुल्क उपलब्ध है। इसे प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति और संस्थान निम्निलिखित पते पर आवेदन करें :

अकादमिक संपादक
परिप्रेक्ष्य
राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा)
17–बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली–110 016

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा) के लिए कुलसचिव, न्यूपा द्वारा प्रकाशित तथा बचन सिंह, बी–275, अवन्तिका, रोहिणी सेक्टर 1, नई दिल्ली द्वारा लेजर टाइपसेट होकर मै. पावर प्रिन्टर्स, नई दिल्ली में न्यूपा के प्रकाशन विभाग द्वारा मुद्रित।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 3, दिसंबर 2013

विषय सूची

आलेख

सविता कौशल
विद्यालय नेतृत्व क्षमता का विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि पर प्रभाव 1

अमित कुमार एवं **आशुतोष अवस्थी**
वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में प्रभावी प्रबंधन कौशल 13

अनिल कुमार जैन एवं **रजनी रंजन सिंह**
प्रारंभिक शिक्षा में लैंगिक असमानता की वर्तमान स्थिति : राजस्थान का केस अध्ययन 25

मनोज कुमार चाहिल
विद्यालय में लड़कियों का सामाजीकरण और लैंगिक समता के अवसर 49

सुधाकर प्रसाद सिंह
बुनियादी शिक्षा की प्रासंगिकता 61

महेश नारायण दीक्षित
अधिगम में स्व-मूल्यांकन का संप्रत्यय, प्रक्रिया एवं महत्व 71

शोध टिप्पणी / संवाद

प्रीति मौर्य
माध्यमिक शिक्षा स्तर पर कार्यरत शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता एवं शिक्षक प्रभावशीलता का अध्ययन 83

राजकुमारी कालरा एवं **प्रीति मनानी**
गृह पर्यावरण का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव 97

विवेक गुप्ता एवं **संदीप कुमार श्रीवास**
उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्र-छात्राओं के स्वप्रत्यय का अध्ययन 105

नीतू कश्यप एवं **विनीत श्रीवास्तव**
छात्राध्यापकों की संज्ञानात्मक बुद्धि तथा उनकी संवेगात्मक बुद्धि के मध्य सहसंबंध का अध्ययन 115

चिंतक और चिंतन

बीरेन्द्र सिंह रावत
ज्याँ पियाजे का भाषा चिंतन 131

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 3, दिसंबर 2013

विद्यालय नेतृत्व क्षमता का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव

सविता कौशल*

प्रस्तावना

यह माना जाता है कि एक स्कूल की नेतृत्व टीम स्कूल में ऐसा वातावरण बनाने की प्रेरणा शक्ति हो सकती है जो प्रभावी शिक्षण और सफल छात्र परिणामों को प्राप्त करने को प्रोत्साहित करती हो। यह भी कहा जाता है कि एक पेशेवर और सांस्कृतिक रूप से विविध और अपने लक्ष्य के लिए प्रतिबद्ध नेतृत्व टीम, अपने सामूहिक कौशल और अनुभव के द्वारा यह सुनिश्चित कर सकती है कि माता-पिता और छात्र एक उच्च स्तर को प्राप्त करने के लिए सशक्त महसूस करें और इसके साथ-साथ नेतृत्व टीम अध्यापकों को उचित प्रशिक्षण, शिक्षण सामग्री और आकर्षक और उचित शिक्षा प्रदान करने के लिए सहारा देती है। इस शोध पत्र में इस क्षेत्र में किये शोध अध्यापकों की समीक्षा की गई है। इस लेख के द्वारा यह ज्ञात होता है कि नेतृत्व प्रभावों पर किए गए शोध पत्रों के परिणाम स्कूल नेतृत्व और छात्र परिणाम के बीच एक सुदृढ़ कड़ी को दर्शाते हैं।

प्रभावी स्कूल नेतृत्व की छवि

एक उत्कृष्ट विद्यालय की सतह खरोंच कर अगर हम देखे हैं तो हमें उसके नीचे एक उत्कृष्ट प्रधान अध्यापक मिलने की संभावना होती है। उसी प्रकार से एक असफल विद्यालय में हमें कमजोर नेतृत्व मिलेगा। एक स्कूल की सफलता का कारण एक सकारात्मक रवैये वाला अनुभवी प्रधान अध्यापक होता है जो स्कूल का ऐसा वातावरण बनाता है जिससे स्टाफ के सदस्यों और प्रशासन के बीच और स्टाफ के सदस्यों और विद्यार्थियों के बीच सहयोग और वार्तालाप को प्रोत्साहन देता है।

एक अच्छा प्रधान अध्यापक इस तथ्य को महत्व देता है कि ''स्कूल में अधिगम की गुणवत्ता हो और बच्चों को गुणवत्ता स्तर की शिक्षण अधिगम सामग्री उपलब्ध हो।''

---

*सहायक प्रोफेसर, प्रशिक्षण और क्षमता विकास विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा), नई दिल्ली

वह पाठ्यचर्या के लिए ऐसी योजना बनाता है जो लचीली और क्षेत्र के संदर्भ में हो। वह सभी छात्रों हेतु विकासात्मक रूप से उपयुक्त अवधारणात्मक समझ के आधार पर अपेक्षाएं निर्धारित करता है तथा शिष्य केंद्रित संस्कृति का विकास करता है जिसमें उनकी विशेषताओं का सम्मान हो और उसको ध्यान में रखते हुए अध्यापन शैली अपनाई जाए।

प्रधान अध्यापक प्रभावी विद्यालय हेतु सहभागिता का भी नेतृत्व करता है। इसके अंतर्गत वह विद्यालय, परिवारों और अपेक्षाकृत बड़े समुदायों से जुड़े कार्यकलापों के संबंध में सहकार्मियों, माता-पिता, अभिभावकों और महत्वपूर्ण वयस्क व्यक्तियों के सहयोग से कार्य करता है। वह अधिक-से-अधिक पैतृक और सामुदायिक सहभागिता के लिए अवसर सृजित करता है ताकि माता-पिता और समुदाय के अनदेखे अथवा उदासीन दृष्टिकोण के कारण विद्यालय में किये गए प्रयास व्यर्थ न जाएं।

विद्यालय का प्रधान अध्यापक प्रभावी और स्थायी परिवर्तन हेतु संसाधनों की सुविधा प्रदान करता है। स्टाफ़, विद्यार्थियों, माता-पिता को प्रोत्साहित करता है, उनका मार्गदर्शन करता है तथा प्रेरित करता है जिससे विद्यार्थियों के परिणामों में सुधार होता है।

ओफस्टेड (2003) ने बुश और मिडलवुड की पुस्तक (2005) में नेतृत्व को 'बड़ा अच्छा', 'संतोषजनक' और कमज़ोर नेतृत्व में वर्गीकृत किया है। उनके अनुसार स्कूल का 'बहुत अच्छा' नेतृत्व स्कूल के काम में सभी क्षेत्रों से उच्चतम संभव मानक और उपलब्धियों को सुनिश्चित करने के लिए समर्पित होता है। वह चिंतनशील और आत्म-विवेचनात्मक है और स्कूल के भविष्य की स्पष्ट दृष्टि रखता है जिससे अनुयायिओं को यह पता रहे कि उनसे क्या करने की उम्मीद रखी जाती है।

लगभग सभी शैक्षिक सुधार की रिपोर्ट इस निष्कर्ष पर पहुँची है कि राष्ट्र प्रभावी स्कूल नेतृत्व के बिना शिक्षा के क्षेत्र में उत्कृष्टता प्राप्त नहीं कर सकता है। इसलिए कुछ शिक्षाविद् यह भी मानते हैं कि साझा वितरण नेतृत्व स्कूल की उत्कृष्टता के सपने पर केंद्रित है और उत्कृष्टता प्राप्त करने के लिए निवेश का प्रयास करता है। इस संदर्भ में बुश और मिडलवुड (2005) ने संगठन में सबसे महत्वपूर्ण संसाधन के रूप में लोगों को स्वीकार किया है। वे ज्ञान, कौशल और ऊर्जा प्रदान करते हैं जो सफलता के लिए आवश्यक है। वुड, बेनेट, हार्वे और वाईस (2004) ने बुश और मिडलवुड (2005) में

उल्लेख किया है कि उप और सहायक प्रमुख तथा मध्यम स्तर के नेता जैसे– विभागाध्यक्ष और विषय से संबंधित नेता स्कूल के प्रभावी नेतृत्व के लिए महत्वपूर्ण हैं। प्रभावी और कम प्रभावी संगठनों में अंतर लाने वाले कारक उसमें कार्यरत लोगों की गुणवत्ता और प्रतिबद्धता पर निर्भर होते हैं।

नेतृत्व में हम मुख्यतया निम्नलिखित चार क्षेत्रों में हस्तक्षेप करते हैं (जो भी प्रधानाध्यापक इन गुणों का विकास करना चाहता है उन्हें यह खुद के व्यवहार में लाना होता है):

1. ***निर्देशात्मक नेतृत्व :*** इसमें कक्षा में प्रभावी रूप से कैसे काम करें और इस पर समझ बनाने को लेकर काम किया जाता है। प्रधानाध्यापक द्वारा कक्षा-कक्ष का अवलोकन करना, शिक्षक को प्रतिपुष्टि यानि फीडबैक देना और उससे लेना, शिक्षक के साथ मिलकर पाठ योजना बनाना इत्यादि काम होता है। अपनी टीम को लीड करने के लिए प्रधानाध्यापक के पास संबंधित विषय का मूल ज्ञान होना चाहिए। उसे नयी विधियों व शोधों से भी परिचित होना चाहिए।
2. ***व्यैक्तिक नेतृत्व :*** इसमें प्रधानाध्यापक के साथ इस तरह काम किया जाता है कि वह बिना किसी प्रकार की सत्ता का इस्तेमाल किये अपनी टीम को लक्ष्य हासिल करने के काबिल बना सके। प्रधानाध्यापक टीम से जो करवाना चाहता है उसके लिए रोल मॉडल बने, यानि उसका अनुकरणीय व्यक्ति बन कर दिखाए। प्रधानाध्यापक को उनकी जिम्मेदारी से जुड़े नैतिक मूल्यों को समझना तथा व्यवहार में लाना होता है। उनको धैर्य, सुनने की क्षमता, परिश्रम, पहल करना एवं दूसरों की मदद के लिए तैयार रहना जैसे मूल्य अपने व्यवहार में लाने होते हैं।
3. ***संस्थानगत नेतृत्व :*** इसमें विद्यालय के माहौल को बदलने को लेकर इस तरह काम किया जाता है कि बच्चों एवं शिक्षकों के लिए विद्यालय सीखने-सिखाने का एक खुशनुमा माहौल दे पाए। विद्यालय में होने वाली बाल सभा, स्कूल स्तरीय गतिविधियों, जिम्मेदारी सब कुछ बच्चों एवं शिक्षकों के साथ मिलकर तय किया जाता है।
4. ***सामाजिक नेतृत्व :*** इसमें प्रधानाध्यापक में ऐसे गुणों का विकास किया जाता है कि वे समुदाय और स्कूल को जोड़ सकें। विभिन्न गतिविधियों जैसे– खेल, नाटकों, रैली एवं बैठकों के माध्यम से यह कार्य किया जाता है। समुदाय का

विश्वास जीतना और स्कूल की समस्याओं को उसके माध्यम से सुलझाना इसका मुख्य लक्ष्य होता है।

नेतृत्व किस प्रकार का होना चाहिए?

स्कूल के नेताओं को संगठनात्मक पिरामिड के शीर्ष से नेतृत्व नहीं करना चाहिए बल्कि लोगों के साथ अपने पारस्परिक संबंधों के गठजोड़ के द्वारा बुने गए ताने-बाने के से करना चाहिए (मर्फी, 1992)। यह तभी हो सकता है जब प्रधानाध्यापक में स्कूल नेतृत्व के गुण पाए जाएँ जैसे– परिवर्तनकारी नेतृत्व, अनुदेशात्मक नेतृत्व, सामाजिक नेतृत्व, व्यक्तिगत नेतृत्व तथा संस्थागत नेतृत्व। इस संदर्भ में लीथवुड आदि (1996) का सुझाव है कि प्रधानाध्यापक के पद के लिए परिवर्तनकारी नेतृत्व अधिक उपयुक्त है। स्कूल संस्कृति में सुधार लाने तथा व्यावसायिकता बढ़ाने में स्कूलों में प्रधानाध्यापक की भूमिका फेसीलीटेटर (सुगमकर्ता) के रूप में होती है (लीथवुड आदि, 1999)। इसके अलावा विद्यालय का प्रधानाध्यापक एक ऐसा संगठनात्मक ढाँचा तैयार करता है जो बच्चों के लिए विद्यालय की दृष्टि, मिशन और मूल्यों को प्रतिबिंबित करता है तथा विद्यालय को कानूनी आवश्यकताओं और सर्वोतम पद्धति के अनुरूप कार्य करने में समर्थ बनाता है। विद्यालय का प्रधानाध्यापक प्रभावी और स्थायी परिवर्तन हेतु ससांधनों की सुविधा प्रदान करता है– स्टाफ़, विद्यार्थियों, माता-पिता को प्रोत्साहित करता है, उनका मार्गदर्शन करता है तथा प्रेरित करता है जिससे विद्यार्थियों के परिणामों में सुधार होता है।

कुछ शोधकर्त्ताओं ने यह भी पाया कि परिवर्तनकारी नेता के तहत काम करने वाले उच्च हैं और अथ्क प्रयास करते हैं और काम करने के लिए ज्यादा प्रतिबद्ध हैं (पीटर, 2006, एवीओलो आदि, 2004)।

बोलजर (2001) ने शिक्षकों की सामान्य भावनाओं को बेहतर बनाने के लिए प्रधान अध्यापक का एक प्रस्तावक के रूप में वर्णन किया है। बोलजर के पर्यवेक्षण के अनुसार परिवर्तनकारी नेतृत्व और सहभागिता व्यवहार द्वारा ही प्रधानाध्यापक शिक्षकों को प्रेरित करता है।

हूबर (2004) के तर्क के अनुसार प्रधान अध्यापक की अनुदेशात्मक नेतृत्व में एक महत्वपूर्ण भूमिका है। उसके अनुसार प्रधानाध्यापक शिक्षण लक्ष्यों पर सहमति के लिए संसाधनों का पढ़ाने के लिए उपयुक्त इस्तेमाल, शिक्षण लक्ष्यों पर सहमति, शिक्षकों

की कक्षा अवलोकन संरचित प्रतिक्रिया एवम् कोचिंग के दौरान शिक्षकों का मूल्यांकन और परामर्श प्रदान करके अपने प्रभाव का प्रयोग करता है। जबकि लीथवुड (1994) के अनुसार विद्यालय के अनुदेशात्मक नेतृत्व की छवि अब पर्याप्त नहीं है क्योंकि यह दूसरे क्रम पर आने वाले परिवर्तन के क्षेत्र को संबोधित नहीं करती है।

अनुकरणीय नेतृत्व शिक्षण और सीखने, छात्रों, अभिभावकों और समुदाय के सपनों और उम्मीदों पर ध्यान केंद्रित करने के प्रति विद्यालय और समुदाय के बीच उत्साह पैदा करता है। इन शोध परिणामों से यह प्रश्न भी उठता है कि नेतृत्व के किस प्रकार के तरीके को एक विद्यालय में अपनाया जाता है। इस प्रश्न का उत्तर हमें सीनेज के कथन में मिलता है। सीनेज (1990) के अनुसार बदलते हुए तंत्रों में भिन्न प्रकार के नेतृत्व के तरीके संगठनात्मक विकास के विभिन्न समयों पर इस्तेमाल में लाए जाने चाहिए।

नेतृत्व और छात्र परिणाम

प्रधानाध्यापक की एक महत्वपूर्ण भूमिका यह है कि वह छात्रों की समग्र उपलब्धि तय करे। प्रधानाध्यापक की भूमिका अप्रत्यक्ष और महत्वपूर्ण है (बोरजर और वाहलबर्ग, 1985 बूलाच और मैलोन, 1994, न्यूमैन एवम् एसोसिएट, 1996, पेरेदेस और फ्रेज़र, 1992, विंटर और स्वीनी, 1994)। इसके अलावा हाल ही में किए गए प्रयोगाश्रित अनुसंधान पर आधारित कम-से-कम पाँच समीक्षा छात्रों के परिणामों पर नेतृत्व के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभावों की पुष्टि करती है (बेल बोलम और क्यूंबीलो, 2003, लीथवुड, डे, समनस, हैरिस और हॉपकिन्स, 2005; लीथवुड, सीशोर लुइस, ऐंडरसन और वाहलस्ट्रोम, 2005 वीटीज़र, बोस्कर और क्रूगर, 2003, मारज़ानो वाटर्ज और मेकनल्टी, 2005)। इसका तात्पर्य यह है कि प्रधानाध्यापक छात्रों को प्रत्यक्ष अनुदेश प्रदान नहीं करता है जबकि प्रधानाध्यापक परिसर के समग्र माहौल के द्वारा छात्रों की सफलता को प्रभावित करता है। विद्यालय का प्रधानाध्यापक इन महत्वपूर्ण सिद्धातों का विकास करता है और सहयोग से ऐसा वातावरण तैयार करता है जो अध्ययन में सभी छात्रों की सहायता करे। ''प्रधानाध्यापक की एक महत्वपूर्ण भूमिका यह है कि वह ऐसी परिसर संस्कृति पैदा करता है जो छात्र की उपलब्धि में अनुकूल भूमिका निभाती है'' (एडमेंडस, 1979, लीथवुड, 1994)।

शैक्षिक नेता छात्रों के परिणामों को किसी एक सीमा तक प्रभावित करते हैं। इस सवाल पर कई प्रकार के शोध किए गए हैं। नेतृत्व और छात्र परिणामों के बीच के संबंधों

में रुचि के लिए एक प्रमुख कारण नीति निर्माताओं की विभिन्न सामाजिक और जातीय समूहों को शैक्षिक परिणामों की लगातार असमानताओं को कम करने की इच्छा है और उनका यह विश्वास कि शैक्षिक नेता ऐसा करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं (ओर्गनाईज़ेशन फॉर इकोनोमिक को-ओपरेशन एंड डेवलेपमेंट, 2001)।

विवियन, क्लेयर और के नेथ (2008) के द्वारा छात्रों के शैक्षिक और गैर-शैक्षिक परिणामों पर विभिन्न प्रकार के नेतृत्व के सापेक्ष प्रभाव की जाँच करने के लिए अध्ययन किया गया था। इसकी कार्यप्रणाली छात्र परिणाम और नेतृत्व विश्लेषण पर आधारित 27 प्रकाशित अनुसंधानों के निष्कर्षों के तत्व विश्लेषण पर आधारित थी। तत्व विश्लेषण ने यह संकेत दिया कि अनुदेशात्मक नेतृत्व का छात्र परिणामों पर प्रभाव परिवर्तनकारी नेतृत्व के तीन से चार गुणा था।

गिविन (2005) के अवलोकन के अनुसार अनुदेशात्मक नेतृत्व छात्रों की उपलब्धि बढ़ाने तथा स्कूल के लक्ष्य और उद्देश्य को प्राप्त करने में प्रोत्साहित करता है जिसके-परिणाम स्वरूप बच्चों के परिणाम अच्छे होते हैं। लीयू (1984) का कथन भी इस बात की पुष्टि करता है। लीयू के अनुसार अनुदेशात्मक नेतृत्व परोक्ष और अपरोक्ष रूप से व्यवहारों को प्रभावित करता है जो शिक्षकों के निर्देश को प्रभावित करते हैं और इसका प्रभाव छात्रों के सीखने पर पड़ता है। शोधकर्ताओं की समीक्षा द्वारा यह भी पता चलता है कि अनुदेशात्मक नेतृत्व के अलावा नेता के द्वारा दर्शायी गयी भावानात्मक मति जैसे– नेता के द्वारा अपने कर्मचारी को दिया गया ध्यान और कर्मचारी की क्षमता का उपयोग, कर्मचारी के उत्साह और आशावाद को बढ़ाता है और निराशा कम कर देता है। मिशन की भावना फैलाता है। यह परोक्ष तथा अपरोक्ष रूप से उपलब्धि भी बढ़ाता है (मेककोल-कैनेडी और ऐडंरसन 2002, लीथवुड, सीशोर लुई, ऐडंरसन और वाहल्स्टॉम, 2004)।

स्कूल नेतृत्व को मापने के लिए इस्तेमाल किए गए अंशों के निरीक्षण के आधार पर नेतृत्व प्रथाओं या आयामों के पाँच सेट का पता चलता है : लक्ष्यों और उम्मीदों को स्थापित करना; रणनीतिक रूप से संसाधन को जुटाना; नियोजन शिक्षण और पाठ्यक्रम का समन्वय और मूल्यांकन; शिक्षक-शिक्षा और विकास को बढ़ावा देना और भाग लेना; यह सुनिश्चित करना कि एक व्यवस्थित और सहायक वातावरण हो। इसी अध्ययन के दूसरे तत्व विश्लेषण द्वारा यह पता चला कि शिक्षक-शिक्षा और शिक्षक विकास में भाग

लेने और बढ़ावा देने का छात्रों के परिणामों पर औसत प्रभाव पड़ता है। जबकि लक्ष्यों को स्थापित करना; नियोजन, शिक्षण और पाठयक्रम के समन्वय और मूल्यांकन से संबंधित आयामों का छात्रों के परिणामों पर औसत दर्जे का प्रभाव पड़ता है।

परिवर्तनकारी और अनुदेशात्मक नेतृत्व के बीच और पाँच नेतृत्व के आयामों के बीच की तुलना यह सुझाव देती है कि जितना नेता अपने रिश्तों, अपने काम और शिक्षण और सीखने के मुख्य कारोबार पर ध्यान केंद्रित करता है उसका उतना ही अधिक प्रभाव छात्रों के परिणामों पर पड़ता है।

'काया पलट' स्कूलों के मामलों का अध्ययन भी प्रभावशील स्कूल नेतृत्व तथा जिले के नेतृत्व के हस्तक्षेप को निरूपवाद रूप से श्रेय देता है। इनके अनुसार उनके द्वारा शिक्षण और सीखने में किए गए हस्तक्षेप स्कूलों और शिक्षण पर सकारात्मक प्रभाव डालते हैं (एडमंडस, 1979; श्यूरिच, 1998; मादेन 2001)।

अध्यापकों, विधार्थियों तथा अभिभावकों को सृजनात्मक और नवाचारी कार्य के प्रति प्रोत्साहित करने के लिए परिस्थितियों का और इसके साथ-साथ आधारभूत ढाँचे और प्रक्रियाओं के विकास में अपनी अहम भूमिका के द्वारा एक प्रभावी प्रधान अध्यापक अपने विद्यालय में उत्कृष्टता लाता है।

डूमे (2013) के अनुसार अच्छा प्रधानाध्यापक अपरोक्ष रूप में स्कूल के लिए बेहतर परिणाम लाने का कारक होता है। लेकिन वह केवल अकेला या मुख्य कारक नहीं हैं। प्रधानाध्यापक नेतृत्व और शिक्षक सहयोग जितना अधिक मजबूत होते हैं उतना ही ज्यादा शिक्षकों में छात्रों में गणित के विकास पर सार्थक प्रभाव डालने का विश्वास बढ़ता है। अन्य किए गए शोध भी यह प्रमाणित करते हैं कि स्कूल वातावरण का छात्रों की उपलब्धि पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है (न्यूमैन एवम् ऐसोसिएट, 1996, विंटर और स्वीनी, 1999, बालूच और मेलोन, 1990: पैरादेस और फ्रेज़र, 1992, बोरजर लो ओह औ बालर्ग, 1985)।

जेज सेल, सलीगर, लीथवुड और जान्जी (2001) ने परिवर्तनकारी नेतृत्व के प्रभाव पर जोर दिया है। प्रधानाध्यापक के परिवर्तनकारी नेतृत्व का शिक्षकों की प्रतिबद्धता पर तथा शिक्षक प्रेरणा के माध्यम से शिक्षकों के प्रयासों पर अप्रत्यक्ष प्रभाव होता है। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि अतिरिक्त प्रतिबद्धता और शिक्षकों के प्रयासों के

परिणामस्वरूप छात्रों के साथ उनकी बातचीत में परिवर्तन आता है, जिसका छात्रों के परिणाम पर एक सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

निष्कर्ष

इस चर्चा के अनुसार यह निष्कर्ष निकलता है कि एक ठोस नेतृत्व स्कूल की सफलता की सबसे बड़ी कुंजी है। इससे यह पता चलता है कि संगठन में जिम्मेदार कर्मियों की गुणवत्ता को पहचानने की जरूरत है और यह भी जानने कि जरूरत है कि किस प्रकार का नेतृत्व शिक्षकों को स्कूल में सफलता लाने की प्रतिबद्धताओं का आवाह्न करता है। एक प्रधानाध्यापक में विद्यालय के नेता के रूप में परिवर्तनकारी, अनुदेशात्मक, सामाजिक, व्यक्तिगत और संस्थागत नेतृत्व के गुण होंने चाहिए।

स्कूलों को समय-समय पर सुधार लाने की जरूरत होती है और परिवर्तन की इस प्रक्रिया को एक सक्षम दृढ़ प्रतिभाशाली और योग्य नेता की आवश्यकता होती है। इसकी शुरुआत करने का सबसे उपयुक्त प्रारंभिक बिंदु एक सक्षम और प्रतिभाशाली प्रधान अध्यापक की खोज करना है जो बाद में छात्रों और स्टाफ और छात्रों की आम उम्मीदों के विकास में उचित नेतृत्व देगा।

स्कूल का नेतृत्व उच्च गुणवत्ता की शिक्षा के लिए आवश्यक माना जाता है। स्कूल नेतृत्व पर किए गए अनुसंधान निष्कर्षों को मुख्यतः पाँच बिंदुओं में वर्गीकृत किया जा सकता है :

- छात्रों के सीखने पर नेतृत्व का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। पर इसकी भूमिका दूसरे स्थान पर आती है। क्योंकि पाठयक्रम की गुणवत्ता और शिक्षकों के अनुदेश भी इसमें एक महत्वपूर्ण कारक हैं।
- वर्त्तमान में अध्यापक और प्रशासक स्कूल में सबसे अधिक नेतृत्व प्रदान करते हैं परन्तु नेतृत्व के अन्य संभावित स्रोत भी मौजूद हैं।
- नेतृत्व प्रथाओं का एक कोर सेट ''सफल नेतृत्व'' की मूल बातों के रूप में होता है और यह लगभग सभी शैक्षिक संदर्भों में महत्वपूर्ण है।
- सफल विद्यालय नेता उन्मुख नीति के सदंर्भ द्वारा बनाई गई चुनौतियों और अवसरों का उत्पादकता के साथ जवाब देते हैं।

- सफल विद्यालय नेता छात्रों के विविधता पूर्ण समूहों को उत्पादकता से जवाब देते हैं।

संदर्भ :

एडमंड्स, आर (1979). *ईफैक्टिव स्कूल फॉर दा अर्बन पुअर. एजुकेशन लीडरशिप* 37(1), 15-24.

एवीएलो, बी जे, जू. डब्लयू, कोह. डब्लयू और भाटिया, पी (2004). *ट्रांसफार्मेशनल लीडरशिप एंड ऑर्गनाइज़ेशनल कमिटमंट; मैडिऐटिंग रोल ऑफ साइकॉलोजिकल एमपावरमेंट एंड मौडरेटिंग रोल ऑफ डिसटैन्स.* आनलाईन: https://www.b.interscience.com से प्राप्त किया गया।

बुश, टी और मिडलवुड,डी (2005). *लीडिंग एंड मैनेजिंग पीपल इन ऐजुकेशन,* लंदन: सेज पब्लीकेशंस लिमिटिड.

बोलजर, आर (2001). द *इंफ्लुंएंस ऑफ लीडरशिप स्टाइल आन टीचर जॉव सेटिस्फैक्शन.* ऐजुकेशनल क्वारटरली, 37 (5), 662-683.

बूलाच, सी. आर और मेलोन, बी (1990). द *रीलेशनशिप ऑफ स्कूल क्लाइमेट टू द ईम्पलीमैन्टटेशन ऑफ स्कूल रिफोरम्स.* ई.आर.एस. स्पैक्ट्रम. 12(4),3-8.

बेनिस, डब्ल्यू और नानूस, (1985). लीडर्स; द *स्ट्रेटीजीस फॉर टेकिंग चार्ज.* न्यूयार्क, हार्पर एंड रो।

बेल, एल, बोलम, आर, और क्यूबीलो, एल (2003). ए *सिस्टेमैटिक रीव्यू ऑफ दा ईम्पैक्ट ऑफ स्कूल हैडटीचरस् एंड प्रिंसिपल्स ऑन स्टूडेन्ट आउटकम्स.* लंदन: ई.पी.पी.आई. सेंटर, सोशल सांईस रिसर्च यूनिट, इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन.

क्यूबन, एल (1988). द *मैनेजीरियल इम्पैरिटिव एंड द प्रैक्टिस ऑफ लीडरशिप. इन स्कूल्स,* अलबेनी, एन वाए, स्टेट यूरिवर्सिटी ऑफ न्यूयार्क प्रैस.

डैटनो, ए (2005). दा *सस्टेनेबिलिटी ऑफ कॉम्प्रीहेन्सिव स्कूल रिफोर्म मोडल्स् ईन चैन्जींग डिस्ट्रीक्ट एंड स्टेट कॉनटेक्टस.* एजुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन क्वाटरली, 41(1),121-153.

डूमे, जेवियर, *'प्रिंसिपल लीडरशिप लौंग-टर्म इंडाईरेक्ट एफैक्ट्स् ऑन लर्निंग ग्रोथ ईन मैथमेटिक्स्',* एलिमैन्ट्री स्कूल जर्नल. दिंसबर 2013. दा यूनिर्वसिटी ऑफ शिकागो प्रेस.

गोल्डनर्बग, सी. (2008). *टीचिंग इंग्लिश लैंगवेज* लर्नरस्: *वॉट दा रिसर्च डज एंड डज नौट से,* अमेरिकन एजुकेटर, 32(2), 8-23, 42-44.

गिरविन, एन. (2005). दा प्रिंसीपल्स् रोल ईन के-12 प्रोफेशनल डेवलपमैन्ट. http//:www.askasia.org से लिया गया.

हारग्रेव्स्, ए., और फिंक, डी.(2006). *सस्टेनेबल लीडरशिप फॉर सस्टेनेबल चेंज,* एनफ्रानसीसको: जोसे-बास.

हूबर, एस.जी (2004). *स्कूल लीडरशिप एंड लीडरशिप डैवलपमैंट: एडजस्टिंग लीडरशिप थयोरीज एंड डवलपमैंट प्रोग्राम्स टू वैल्यूज एंड कोर परपज ऑफ स्कूल,* जर्नल ऑफ ऐजुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन, 42(6), 669-884.

जौन ए.आर. और पीटर, जी. (2006) *ट्रांसफार्मेशनल लीडरशिप एंड और्गनाइज़ेशनल कमिटमेंट; दी मैडिएटिंग इफैक्टस ऑफ कलेक्टिव टीचर ऐफीकैसी स्कूल इफैक्टिवनस एंड स्कूल इंप्रूवमैंट,* 17(2),179-199. नेतृत्व को संगठन के सभी सदस्यों को संगठन के लक्ष्यों और उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक कार्य करने की क्षमता के रूप में परिभाषित किया जाता है (बेनिस और नानूस, 1985)

जेज से.एफ., सलीगर और जान्जी (2002): *ट्रांसफोरमेशनल लीडरशिप इफैक्टस ऑन टीचर्स कमिटमेन्ट एंड ऑफ एजुकेशनल ऐडमिनिस्ट्रेशन,* 41(3), 228-256.

काट्ज़ेनबच, जे.आर. और स्मिथ, डी.के., (1993). *दा वीजडम ऑफ टीम्स : क्रीएट दा हॉई परफोरमेन्स ऑर्गेनाईजेशन,* न्यूयॉर्क : हारवर्ड बिज़नेस स्कूल प्रेस.

कोटर, जे.पी., (1990) ए फोर्स ओफ चेन्ज: हॉउ लीडरशीप डीफरस् फरोम मेनेजमैन्ट। न्यूयॉर्क : फ्री प्रेस.

लिथवूड, के. और ड्यूक, डी.एल. (1999). *ए सेंचूरीज क्वेस्ट टू अंडरस्टैंड स्कूल लीडरशिप.* जे. मर्फी और के. एस. लूईस (ईडीएस.) में. हैंडबुक ऑफ रिसर्च ऑन एजुकेशनल एडमीनिशट्रेशन. सैन फ्रांसिस्को : जोसे-बास. पी.पी. 45-72 जर्नल ओफ लीडरशीप ईन एजुकेशन, 4(3), 217-35.

लीथवुड, के.एच. (1994). *लीडरशिप फॉर स्कूल रि-स्ट्रक्चरिंग एजुकेशनल एडमीनिस्ट्रेशन* 30 (4), 498-518

लिथवूड, के. सीशोर एट. एल. (2004). *एक्जीक्यूटिव समरी: हाउ लीडरशीप इंफ्लूएनसिस स्टूडैंट लर्निंग.* लीडरशीप फरोम दा लीडरशीप प्रोजेक्ट: दा वालेस फाउंडेशन.

लीथवुड, के.एच., सीशोर लुइस, के., एंडरसन, एस और वाहलसट्रोम, के. (2004). हऊ *लीडरशिप इंफ्लुऐंसस् स्टुडेन्ट लीडरशिप* – www.wallacefoundation.org

लीथवुड, के., डे., सी., समोनस, पी., हैरिस, ए., और हॉपकिंस, डी. (2006). *सेवन स्ट्रोंग क्लेम्स् अबाउट सक्सेसफुल स्कूल लीडरशिप.* नॉटिंघम, ब्रिटेन : नेशनल कॉलेज ऑफ स्कूल लीडरशिप.

लीयू, चिंग-जेन (1984). *एन आइडेन्टिफीकेशन ऑफ प्रिंसीपल्स इंस्ट्रक्शनल लीडरशिप इन इफैक्टिव स्कूल्स,* अनपब्लिश 5 इ. डी. डी. डिसरटेशन यूनिवर्सिटी ऑफ सिनसिनाटी. लीडरशिप फॉर प्राइवेट स्कूलस इमप्रकूमेंट न्यूयार्क यूनिवर्सिटी www.nyu.edu/classes/keeper/waoe/yuv.pdf वेबसाईट में बताया गया.

मर्फी, जे (1992). *दा लैंडस्केप ऑफ लीडरशिप प्रीप्रेशन : रीफॉरमिंग दा एजूकेशन ऑफ स्कूल एडमिनिस्ट्रेशन न्यूबरी पार्क:* क्रोवीन प्रेस, इंक

मैककोल-कैनेडी और ऐंडरसन, आर.डी, 2002)। *इंपैक्ट ऑफ लीडरशिप स्टाईल एंड इमोशंस ऑन सर्बोडिनेट परफोंमेन्स दी लीडरशिप* क्वाटरली 13 पी.पी. 545-559।

मादेन, एम. (ईडी.). (2001). *सक्सेस अगेंस्ट दा ऑडस्, फाईव ईयर्स ऑन : रीविज़ीटींग इफैक्टिव स्कूल्स् इन डीसएडवॉनटेजड एरीयाज.* लंदन: रूटलेज फालमर.

मरज़ानो, आर.जे., वाटरस्, टी., मैकनुलटी, बी.(2005). *स्कूल लीडरशिप* देट *वर्क्स : फ्रॉम रिसर्च टू रिजल्टस्.* अरोरा, सीओ : ए.एस.सी.डी. एंड मेकरेल.

न्यूमैन, एफ.एम., एंड एसोसिएट्स (1996). *ऑथैंटिक इंस्ट्रक्शन: रि-सट्रक्चरिंग स्कूलस फॉर इंटेलैक्चुअल क्वालिटी.* सैन फ्रांसिस्को, सीए: जोसे-बास.

न्यूमैन, सुज़न बी., एंड डिकिंसन, डेविड के. (2001). ईन्ट्रोडक्शन. सुसान बी. न्यूमैन और डेविड के. डिकिंसन (ईडस्.) में, *हैंडबुक ऑफ अरली लिटरेसी रिसर्च* (पी.पी. 3-10). न्यूयॉर्क : गिलफोर्ड प्रेस.

ऑफिस फॉर द स्टैंड्रर्डस इन ऐजुकेशन (ओफस्टेड) (2003). फ्रेमवर्क 2003 इंसपैक्टिंग स्कूलस. बुश, टी और मिडलवुड, डी (2005). लीडिंग एंड मैनेजिंग पीपल इन ऐजुकेशन में लंदन: सेज पब्लिकेशन

पीटरसन, के. (2002)। *दा प्रोफेशनल डैवलेपमैंट ऑफ प्रिंसिपल्स: ईनोवैशन एंड ओपरचूनीटीज़।* एजुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन क्वाटरली, 38 (20: 213-232)

पोंडर, डी.जी., ओगावा, आर.टी. और एडमंडस, ई.ए. (1995). *लीडरशिप एज़ एन ऑर्गेनाइज़ेशन वाइड फेनोमेना: इटस् इंपैक्ट ऑन स्कूल प्रोफोरमेन्स।* एजुकेशनल एडमिनिसट्रेशन क्वाटरली, 31(40, 564-588).

पेरेदेस, वी., और फ्रेज़र, एल. (1992). *स्कूल क्लाइमेट इन ए.आई.एस.डी. ओसटीन, टी. एक्स: इंडिपेंडेंट स्कूल डिस्ट्रिक्ट,* ऑफिस ऑफ रिसर्च एंड इवैलुएशन.

रॉबिन्सन विवयेन, होहीपा मार्गी और लॉयड क्लेयर, (2009). *स्कूल लीडरशिप एंड स्टूडेन्ट ऑउटकम्स: आईडेन्टीफाइंग वॉट वर्क्स एंड वॉय: वीलींगटन: मिनिसट्री ऑफ ऐजूकेशन.*

रोज़, जे. (2006) *इंडपेंडेंट रिव्यू ऑफ दा टिचिंग ऑफ अरली रिडींग,* डी.एफ.ई.एस.

शयूरिच, जे.जे. (1998). *हाईली सक्सेसफुल एंड लविंग पब्लिक एलीमैन्टरी स्कूल्स् पोपूलेटीड मेनली बाए लो-एस.ई.एस.* चिल्ड्रन ऑफ कलर: कोर ब्लीफ्स एंड कल्चरल करेक्ट्रेसटीक्स्. अर्बन एजुकेशन, 33 (4), 451-491.

सनो, कैथरीन ई., बर्न्स, एम. सुज़न, एंड ग्रिफिन पेग (ई.ड.एस.) (1998) *प्रवेटिंग रिडींग डिफीक्लटीज़ इन यंग चिल्ड्रेन.* वाशिंगटन, डीसी: नेशनल एकेडमी प्रेस.

ताशक्कोरी, ए. और टेलर, डी. (2001). *दा लुइसियाना स्कूल ईफैक्टिवनैस प्रोजेक्ट, पेपर प्रजेनटीड एट दा अमेरीकन एजुकेशन रिसर्च एसोशिएसन.* अप्रैल 11-16, 2001. टेक्सास एजुकेशन कोड.

वींटर, जे.एस., और स्वीनी, जे (1994). *इंप्रूविंग स्कूल क्लाइमेट.* एडमिनिस्ट्रेट्स आर दा की, एन.ए. एस.एस.पी. बुल्लेटीन, 73(564), 65-69.

वीटज़ीईरस्, बी. बोस्कर, आर.जे. और क्रूगर, एम.एल. (2003). *एजुकेशन लीडरशिप एंड स्टूडेन्ट आचिवमैन्ट. दा ईल्यूसिव सर्च फॉर एन एसोसिएशन.* एजूकेशन एडमीनिस्ट्रेशन क्वाटरली, 39 (3), पी.पी. 398-425

वीटज़ीरस्, बी., बोसकर, आर.जे., और क्रूगर, एम.एल.(2003). *ऐजुकेशनल लीडरशिप एंड स्टूडैंट एचीवमेंटः दा ईलुसीव सर्च फॉर एन एसोसिएशन.* एजुकेशन एडमिनिस्ट्रेशन क्वाटरली, 39(3), 398-425.

वाईटहर्स्ट, ग्रोवर, जे., और लोनिगन, क्रिस्टोफर जे. (2001). *ईमरजेन्ट लिटरेसीः डेवलपमैंट फ्रॉम प्री-रिडर्स् टू रिडर्स.* सुसन बी. न्यूमैन और डेविड के. डिकिंसन (इ.डी.एस.) में, हैंडबुक ऑफ अरली लिटरेसी रिसर्च (पी.पी. 11-29). न्यूयॉर्क : गिलफोर्ड प्रेस.

वर्नर, एमी ई., और स्मिथ रूथ एस. (1992). *ओवरकमिंग दा ऑडस् : हाई रिस्क चिल्ड्रन फ्रॉम बर्थ* टू एडल्टहुड. इथाका, एन वाइः कॉर्नोल यूनिवर्सिटी प्रैस.

विवियन एम.जे. रॉबिन्सन, क्लेयर ए लॉयड और केनेथ जे रोवे (2008). *दा इंपैक्ट ऑफ लीडरशिप ऑन स्टूडैंट, ऑउटकम्सः एन एनालिसेस ऑफ दा डिफरेंशियल इफैक्टस ऑफ लीडरशिप टाइम्स,* एजुकेशनल एडमीनिस्ट्रेशन क्वाटरली. वॉल. 44, न. 5 पी.पी. 635-674.

वैल्यूस एंड कोर परपज ऑफ स्कूल, जर्नल ऑफ ऐजुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन, 42 (6), 669-884.

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 3, दिसंबर 2013

वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में प्रभावी प्रबंधन कौशल

अमित कुमार* एवं **आशुतोष अवस्थी****

प्रस्तुत शोध पत्र द्वारा वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में प्रभावी प्रबंधन कौशलों की पहचान करने का प्रयास किया गया है। वर्णनात्मक शोध विधि द्वारा 20 शैक्षिक प्रशासकों का साक्षात्कार कर उनकी प्रतिक्रियाएं प्राप्त की गईं तथा प्राप्त प्रतिक्रियाओं के विश्लेषण द्वारा कुल 10 प्रबंधन कौशलों की पहचान की गई। चिह्नित प्रबंधन कौशल हैं– नेतृत्व कौशल, नियोजन/संगठन कौशल, निर्णयन कौशल, संप्रेषण कौशल, कार्मिक/कार्यालय प्रबंधन कौशल, मूल्यांकन कौशल, विरोध प्रबंधन कौशल, जनतंत्रात्मक कौशल, सहयोगात्मक कौशल तथा संसाधनों के अधिकतम उपयोग संबंधी कौशल। वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में उक्त प्रबंधन कौशल अत्यन्त आवश्यक हैं तथा विद्यालयी संस्थितियों में विद्यालय प्रधानाचार्यों एवं नीति निर्देशकों हेतु महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

मानव के स्वयं के विकास के साथ–साथ ही उसके संगठन तथा प्रबंधन की अवधारणा जुड़ी है। शिक्षा प्रबंधन का मुख्य कार्य अधिकतम उपलब्धि करके राष्ट्र तथा समाज का विकास करना है। वर्तमान की जड़ अतीत में होती है और भारत का अतीत अत्यन्त गौरवशाली रहा है। प्राचीन भारत का निर्माण राजनैतिक, आर्थिक अथवा सामाजिक क्षेत्र में न होकर धर्म के क्षेत्र में हुआ था।

भारतीय संस्कृति धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत थी। हमारे पूर्वजों ने जीवन को एक व्यापक दृष्टिकोण से देखा और 'सर्व भूते हिते रता' होना ही अपना कर्तव्य समझा। भारत ने भारतीयता का विकास ही नहीं किया बल्कि उसने चिर मानव को जन्म दिया और मानवता का विकास करना ही उसकी सभ्यता का एक मात्र उद्देश्य रहा। भारत में

*शोधार्थी (एस.आर.एफ.), शिक्षा शास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।
**शोधार्थी, शिक्षा शास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

शिक्षा प्रबंधन का प्रारम्भ अतीत के उस युग में हो चुका था, जिस समय विश्व के अनेक भागों के निवासी जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन भी कठिनता से जुटा पाते थे। भारत के प्राचीन शिक्षा प्रबंधन में व्यावहारिकता की प्रमुखता थी। प्रबंधन इतना जटिल नहीं था, शिक्षा का प्रबंधन गुरुकुलों और मठों में संपादित किया जाता था– गुरु–शिष्य संबंध मधुर थे। शिक्षा वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति के लिये अनिवार्य तत्व है, इस तथ्य को प्राचीन भारतीयों ने भली–भाँति समझा और इसी कारण सभ्यता के प्रारंभिक काल से ही भारत में शिक्षा प्रबंधन की उचित व्यवस्था की गई। यह शिक्षा प्रणाली किसी विदेशी शिक्षा प्रणाली पर आधारित नहीं थी अपितु भारत की अपनी मौलिक शिक्षा प्रणाली थी जिसमें भारतीयता पूर्णरूपेण प्रतिबिम्बित होती थी। परन्तु वर्तमान युग आधुनिकता का युग है जिसमें प्रत्येक प्रक्रिया को वैश्विक परिदृश्य के अनुरूप परखा जाता है। प्राचीन समय में विद्यालय तथा शिक्षा की संस्थाएं छोटे संगठन होते थे परन्तु वर्तमान आर्थिक युग में विद्यालय विस्तृत तथा जटिल संगठनों के रूप में उभर कर आये हैं तथा इनके कार्यों में भी वृद्धि हो गयी है। अब शैक्षिक संगठनों का कार्य केवल शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का संचालन करना ही नहीं है वरन् छात्रों के सर्वांगीण विकास हेतु अनेक क्रिया–कलापों का संचालन करना भी है। इन सभी कार्यों के संचालन तथा संस्थागत निष्पादन को सुनिश्चित करने की दृष्टि से प्रबंधन कौशलों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है।

प्रबंधन कौशल

सम्प्रत्यात्मक रूप से 'कौशल' शब्द से तात्पर्य किसी विशिष्ट कार्य को सफलतापूर्वक पूर्ण करने की योग्यता से है जो ज्ञान को कार्य रूप में रूपातांतरित करती है। यहाँ पर यह स्मरण रखना महत्वपूर्ण है कि अकेला मनुष्य सभी कार्यों में पारंगत नहीं हो सकता है। योग्यता का मुख्य तत्व है कार्यानुकूल शिक्षा (औपचारिक प्रशिक्षण जो कि विशिष्ट कार्य के सफलतापूर्वक समापन में सहायक होता है)। कार्यानुकूल अनुभव (पूर्व कार्य के अनुभव जो कि कार्य के सफलतापूर्वक समापन में सहायता करता है)। एवं कार्यानुकूल कौशल (वे योग्यताएं जो कार्य के सफलतापूर्वक समापन की संभावनाओं को सुनिश्चित करती हैं)। शिक्षा प्रबंधन के क्षेत्र में कौशल सबसे महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं क्योंकि व्यक्ति में योग्यता संबंधी समस्या है तो इसका निराकरण विशिष्ट प्रशिक्षण एवं कोचिंग आदि के माध्यम से किया जा सकता है परन्तु कौशलों के विकास के लिए व्यक्ति में एक

अभिवृत्ति होनी आवश्यक है। समग्र रूप से देखा जाये तो कौशल किसी भी कार्य को विशिष्टतापूर्वक सफल बनाने की योग्यता सिखाते हैं एवं ज्ञान को कार्य के रूप में रूपातंरित करते हैं।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व

वर्तमान युग आधुनिकता एवं वैश्वीकरण का युग है तथा इस युग में शिक्षा की प्रत्येक प्रक्रिया को वैश्विक परिवेश में मूल्यांकित तथा विश्लेषित किया जाता है। आज शिक्षा प्रशासन तथा संगठन के क्षेत्र में प्रशिक्षित तथा प्रबंध कौशलों में दक्ष कार्मिकों की मांग बढ़ती जा रही है क्योंकि कौशल किसी भी कार्य की सफलता को शत-प्रतिशत सुनिश्चित करते हैं। अतः आवश्यकता है कि वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में प्रभावी एवं आवश्यक प्रबंधन कौशलों की पहचान की जाए एवं उनपर विचार किया जाए। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखकर प्रस्तुत शोध शीर्षक का चयन किया गया है।

उद्देश्य

वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में प्रभावी प्रबंधन कौशलों की पहचान करना।

परिसीमन

1. प्रस्तुत अध्ययन केवल लखनऊ नगर तक सीमित है।
2. अध्ययन हेतु उन 20 शैक्षिक प्रशासकों को चुना गया है जिन्हें कम से कम पाँच वर्ष का शैक्षिक क्षेत्र में प्रशासनिक अनुभव प्राप्त है।

शोध क्रिया विधि

प्रस्तुत अध्ययन हेतु वर्णनात्मक शोध विधि के अन्तर्गत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

न्यादर्श

प्रस्तुत शोध हेतु न्यादर्श के रूप में उद्देश्यपूर्ण प्रतिचयन द्वारा 20 शैक्षिक प्रशासकों का चयन किया गया है, जिनमें वर्तमान एवं भूतपूर्व कुलपति, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, संकायाध्यक्ष तथा विभागाध्यक्ष, शिक्षा संकाय, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ। भारतीय प्रबंधन संस्थान, लखनऊ के वरिष्ठ शिक्षक। विभागध्यक्ष वाणिज्य प्रशासन विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय तथा राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के प्रधानाचार्य इत्यादि सम्मिलित हैं।

शोध उपकरण

पस्तुत अध्ययन में प्रदत्त संकलन हेतु स्वनिर्मित, अर्धसंरचित साक्षात्कार प्रपत्र का प्रयोग किया गया है।

प्रदत्त संकलन

चयनित न्यादर्श से प्रबंधन कौशलों के संदर्भ में उनकी प्रतिक्रियाएं प्राप्त करने हेतु शोधार्थी द्वारा व्यक्तिगत रूप से संपर्क किया गया तथा नियत समय पर उनकी प्रतिक्रियाएं प्राप्त की गयीं।

प्रदत्त विश्लेषण

साक्षात्कार प्रपत्र पर प्राप्त प्रतिक्रियाओं को क्रमानुसार व्यवस्थित किया गया तथा प्रबंधन कौशलों की आवृत्ति जानने हेतु प्रतिशत विधि का प्रयोग किया गया। प्राप्त परिणामों को अग्रांकित तालिका में प्रदर्शित किया गया है :

चिह्नित प्रबंधन कौशलों संबंधी तालिका

क्र.सं.	प्रबंधन कौशल	कुल प्रतिक्रियाएं	%
1.	नेतृत्व कौशल	17	85
2.	नियोजन/संगठन कौशल	14	70
3.	निर्णयन कौशल	12	60
4.	संप्रेषण कौशल	11	55
5.	कार्मिक/कार्यालय प्रबंधन कौशल	10	50
6.	मूल्यांकन कौशल	7	35
7.	विरोध प्रबंधन कौशल	4	20
8.	जनतंत्रात्मक कौशल	2	10
9.	सहयोगात्मक कौशल	2	10
10.	संसाधनों के अधिकतम उपयोग संबंधी कौशल	1	5

परिणाम

प्रस्तुत तालिका से स्पष्ट है कि कुल 20 उत्तरदाताओं में से नेतृत्व कौशल को 17 (85%)

ने, नियोजन कौशल को 14 (70%), निर्णयन कौशल को 12 (60%), संप्रेषण कौशल को 11 (55%), कार्यालय/कार्मिक प्रबंधन कौशल को 10 (50%), मूल्यांकन कौशल को 7 (35%), विरोध प्रबंधन कौशल को 4 (20%), जनतंत्रात्मक कौशल को 2 (10%), सहयोग कौशल को 2 (10%), तथा संसाधनों के अधिकतम प्रयोग से संबंधित कौशल 1 (5%), को शिक्षा प्रबंधन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रबंधन कौशलों के रूप में चिन्हित किया। इस प्रकार कुल 10 प्रबंधन कौशलों की पहचान की गयी।

परिणामों की विवेचना

उपर्युक्त परिणामों से स्पष्ट है कि अधिकतर उत्तरदाताओं ने नेतृत्व कौशल को शिक्षा प्रबंधन के लिए सर्वाधिक आवश्यक प्रबंधन कौशल माना है। चूंकि शिक्षा प्रशासन एवं समाज के विभिन्न क्षेत्रों में नेतृत्व कौशलों की उपयोगिता को सदैव ही स्वीकार किया गया है तथा प्रमुखता प्रदान की गयी है। इस संदर्भ में मायर्स ने कहा है कि ''यह निर्विवाद सत्य है कि किसी भी संगठन की प्रभावशीलता अकेले योग्य नेता पर आश्रित होती है एवं जिस नेतृत्वकर्त्ता में दूसरों को समायोजित तथा एकीकृत करने की शक्ति जितनी प्रबल होती है वह उतना ही योग्य समझा जाता है'' शिक्षा प्रबंधन के क्षेत्र में नेतृत्व कौशल की महत्ता को स्पष्ट करते हुए आर.ए. शर्मा ने अपनी पुस्तक में उद्धृत किया है कि ''शैक्षिक क्षेत्र में भी यदि योग्य नेतृत्व की प्राप्ति होती है तो शिक्षा का स्तर उचित दिशा में विकसित होता चला जाता है।'' विद्यालय के विधिवत संचालन में प्रधानाचार्य में नेतृत्व गुणों का होना आवश्यक है क्योंकि उसे विद्यालय की प्रत्येक गतिविधि में अगुवाई करनी होती है। मोरे (2003), के शोध परिणाम विद्यालय प्रबंधन हेतु नेतृत्व कौशलों की उपयोगिता को अधिक स्पष्ट करते हैं। उन्होंने अपने परिणामों में में उत्तम विद्यालयों तथा असंतोषजनक विद्यालयों के प्रधानाचार्यों की नेतृत्व शैली में सार्थक अंतर पाया। इससे स्पष्ट है कि नेतृत्व कौशलों में दक्ष प्रधानाचार्य किसी भी विद्यालय को उन्नति के पथ पर अग्रसर कर सकता है।

नियोजन कौशल के उत्तरदाताओं द्वारा द्वितीय स्थान पर सबसे अधिक महत्वपूर्ण इंगित किया गया है। मुमथास (2008), ने अपने अध्ययन में नियोजन को विद्यालय संगठनात्मक वातावरण का एक प्रभावशाली कारक के रूप में पाया है। इसके अतिरिक्त नियोजन के संदर्भ में थिपोहैमन लिखते हैं कि ''नियोजन वह कार्य है जो अग्रिम रूप से यह निर्धारित करता है कि भविष्य में क्या किया जाना है। इसके अन्तर्गत संस्था के

उद्देश्यों, नीतियों, कार्यक्रमों, कार्यविधियों तथा इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अन्य आवश्यक साधनों का चुनाव सम्मिलित होता है। तथा नियोजन अपने स्वभाव से और यह एक मानसिक प्रक्रिया है, यह आगे देखने एवं भविष्य के लिए तैयारी करने का कार्य है।'' विद्यालय संचालन से संबंधित कोई भी कार्य नियोजन के बिना अपने परिणाम तक नहीं पहुँच सकता तथा किसी भी कार्य की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उक्त कार्य के लिए कितना अच्छा तथा स्पष्ट नियोजन किया गया है। प्राय: प्रत्येक विद्यालय में सत्र के प्रारम्भ होने से पूर्व वर्ष भर की गतिविधियों का नियोजन किया जाता है। अब यदि विद्यालय प्रधानाचार्य नियोजन कौशलों में दक्ष है तो इसका नियोजन भी सुचारु एवं स्पष्ट होगा तथा निश्चित रूप से विद्यालय अपने निर्धारित उद्देश्यों की गुणवत्ता पूर्ण प्राप्ति करता है।

तृतीय स्थान पर निर्णय लेने संबंधी कौशलों को चिह्नित किया गया है। किसी भी स्तर का प्रबंधन निर्णय के साथ ही प्रारम्भ होता है तथा निर्णय के साथ ही समाप्त होता है। वस्तुत: यह प्रबंधन एवं प्रशासन की केन्द्रीय प्रक्रिया है जिसके अधीन सभी प्रशासनिक प्रवृत्तियां आती हैं। निर्णय के महत्व के संबंध में ग्रिफिथ्स लिखते हैं ''प्रशासन का मुख्य कार्य संभवत: प्रभावशाली ढंग से निर्णय प्रक्रिया का विकास और उसे निर्मित करता है।'' सिंह (1991), के शोध परिणाम, प्रस्तुत परिणामों का समर्थन करते हैं, इन्होंने अपने शोध परिणामों में बताया कि विद्यालय प्रधानाचार्यों की निर्णय निर्माण शैली, विद्यालय के कार्मिक वर्ग, संगठन की व्यवस्था एवं प्रभाव, नियंत्रण, सम्प्रेषण एवं निर्देशन, नियोजन तथा नवाचार से धनात्मक रूप से सार्थक संबंध रखते हैं। अत: स्पष्ट होता है कि विद्यालयी संस्थितियों में अन्यत्र सभी क्रियाएं एवं परिणाम, निर्णयों पर निर्भर करते हैं तथा संस्था प्रमुख द्वारा लिये गए निर्णय ही उसे उच्च स्थान दिलाते हैं, लोकप्रिय बनाते हैं तथा संस्था द्वारा निर्धारित उद्देश्यों की गुणवत्तापूर्ण प्राप्ति को सुनिश्चित करते हैं। अत: विद्यालय प्रधानाचार्यों को निर्णयन कौशलों में दक्ष होना आवश्यक है।

वर्तमान परिदृश्य में प्रभावी प्रबंधन कौशलों में संप्रेषण कौशल को चतुर्थ स्थान पर रखा गया है। संप्रेक्षण ऐसा साधन है जिससे संबंध बनते एवं बिगड़ते हैं। मुमथास (2008) ने अपने संगठनात्मक वातावरण संबंधी शोध के परिणामों में सम्प्रेषण कौशल को सबसे प्रमुख स्थान पर रखा है। विद्यालय संगठन एक समान निश्चित उद्देश्य के लिए

संबद्ध व्यक्तियों का एक समूह है, परन्तु इनको उद्देश्य प्राप्ति के लिए समान रूप से लगाये रखना संस्था प्रमुख या प्रधानाचार्य का कार्य है। प्रधानाचार्य तब तक उनमें समन्वय स्थापित नहीं कर सकता जब तक कि वह प्रभावी संप्रेषण द्वारा उनको प्रभावित नहीं करता। संस्था के निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कभी उसे सूचनाएं, कभी निर्देश, कभी आदेश आदि देने पड़ते हैं। ये सभी कार्य प्रभावी सम्प्रेषण द्वारा ही संभव हैं। अतः स्पष्ट है कि विद्यालय प्रबंधन हेतु प्रधानाचार्य में संप्रेषण कौशलों का होना नितांत आवश्यक है।

कार्मिक प्रबंधन कौशल जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि संगठन में दूसरों के साथ कार्य करने की योग्यता और संगठन से संबंधित सभी कार्मिकों को प्रबंधित करने एवं कार्य समूह में स्थित लोगों का सहयोग प्राप्त करने की क्षमता का नाम है। यह कौशल आपसी समझ, धैर्य, विश्वास और अन्तर्वैयक्तिक संबंधों में वास्तविक सहभागिता आदि को शामिल करता है जो प्रत्येक स्तर के प्रबंधकों के लिए आवश्यक है। उत्तरदाताओं द्वारा कार्मिक एवं कार्यालय प्रबंधन कौशल को पांचवें स्थान पर महत्वपूर्ण बताया है। कार्मिक प्रबंधन कौशल का कार्य मानव शक्ति को इस प्रकार प्रबंधित व निर्देशित करना है कि संगठन का प्रत्येक सदस्य अधिक प्रभावशाली ढंग से कार्य कर सके। कार्मिक प्रबंधन कौशल की महत्ता को और अधिक स्पष्ट करते हुए आर्मस्ट्रांग (1999) ने कहा है कि ''यह मानव संसाधन को निर्देशित करने, प्रेरित करने तथा आवश्यकतानुसार प्रशिक्षित व विकसित करने की प्रक्रिया है, साथ ही यह संस्था में उत्तम वातावरण तथा कार्य दशाओं को विकसित करने पर बल देता है जिससे संस्थागत उद्देश्यों की निश्चित प्राप्ति की जा सके।'' प्रत्येक संगठन में, वह चाहे बड़ा हो अथवा छोटा उसमें भिन्न स्वभाव, अभिवृत्ति, रुचियों, प्रेरणाओं और आवश्यकताओं को रखने वाले व्यक्ति एक साथ रहते हैं। एक साथ रहने एवं कार्य करने के कारण भी उनके भिन्न-भिन्न उद्देश्य एवं लक्ष्य संगठन के लक्ष्यों में परिवर्तित हो जाएं, यही कार्य कार्मिक प्रबंधन कौशल का कार्य है। इसीलिए विद्यालय कर्मचारियों का कार्मिक/कार्यालय प्रबंधन कौशलों में दक्ष होना आवश्यक है।

छठवें स्थान पर मूल्यांकन कौशल को अंकित किया गया है। मूल्यांकन एक सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया का प्रयोग हम जीवन में निरंतर करते रहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की प्रतिक्रिया एवं व्यवहार का मूल्यांकन

करता है। इसके अतिरिक्त वह अन्य व्यक्तियों में उत्पन्न हुए व्यावहारिक परिवर्तनों के आधार पर अपने स्वयं के कार्यों का मूल्यांकन करता है। चूंकि विद्यालय एक शैक्षिक संस्था है इसलिए इसमें जो भी मूल्यांकन किये जायेंगे वह सभी शैक्षिक व्यवस्था को प्रभावित करेंगे। इसीलिए विद्यालय प्रधानाचार्य के लिए मूल्यांकन कौशलों में दक्ष होना अत्यन्त आवश्यक है साथ ही मूल्यांकन की विभिन्न विधियों एवं प्रविधियों का ज्ञान होना भी महत्वपूर्ण है क्योंकि मूल्यांकन द्वारा ही विद्यालय की शैक्षिक प्रगति का ज्ञान होता है। इससे उनमें प्रेरणा, आत्मसंतोष एवं आत्मविश्वास आदि उत्पन्न होते हैं। साथ-ही-साथ अपनी कमियों की जानकारी भी प्राप्त हो जाती है जो उन्हें भविष्य में बेहतर कार्य करने एवं भविष्य की योजना निर्माण में मांग के अनुरूप परिवर्तन करने की प्रेरणा देती है।

प्राप्त प्रतिक्रियाओं के अनुसार विरोध प्रबंधन कौशल को सातवें स्थान पर अंकित किया जाता है। विरोध जीवन की वास्तविकता है। मनुष्य को अपने जीवन के सभी क्षेत्रों-परिवार, सामाजिक जीवन, राजनीति तथा व्यापार आदि में विरोध का सामना करना पड़ता है। सभी स्तरों पर शैक्षिक प्रबंधकों को भी विरोधी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। यह विरोध प्रबंधक तथा कर्मचारियों के मध्य हो सकता है, कर्मचारियों में आपस में हो सकता है, तथा अपने संस्थान तथा अन्य संस्थानों में हो सकता है। सत्य तो यह है कि शिक्षा के क्षत्र में विरोध संस्थागत जीवन का एक सामान्य अंग बन गया है, और इसका परिणाम यह है कि हमारे देश में अधिकांश शैक्षिक प्रशासकों का अधिकाधिक समय इन विरोधों से उत्पन्न हुई समस्याओं का समाधान करने में व्यर्थ चला जाता है तथा उनके पास रचनात्मक नियोजन एवं विकासात्मक कार्यों के लिए बहुत कम समय बचता है। विरोध संस्था के स्थायित्व तथा उसकी प्रगति से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। सामान्यत: ऐसा सोचा जाता है कि विरोध कर्मचारियों तथा संस्थाओं के लिए अक्रियात्मक होते हैं तथा संस्था की प्रभावशीलता पर उनका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत कुछ विरोध क्रियात्मक भी होते हैं एवं किसी नवीन दिशा को जन्म देते हैं। अत: अब इस बात पर बल दिया जाने लगा है कि शैक्षिक प्रबंधकों या विद्यालय प्रधानाचार्यों के लिये संस्थागत विरोधों के स्वरूप तथा प्रबंधन से संबंधित ज्ञान तथा कौशलों के विकास की नितांत आवश्यकता है।

भारत एक जनतांत्रिक राष्ट्र है। अत: राष्ट्र द्वारा यह अपेक्षा की जाती है कि

समाज के सभी क्षेत्रों में जनतंत्र के सिद्धांतों का पालन किया जाए। यही बात विद्यालय प्रशासन तथा प्रबंधन पर भी दृष्टिगत होती है। जनतंत्रात्मक कौशलों को आठवें स्थान पर महत्वपूर्ण माना गया है। सामान्यत: जनतंत्र का अर्थ शासन की उस प्रणाली से होता है जिसमें जनता अपना शासन स्वयं चलाती है, कोई व्यक्ति विशेष नहीं अर्थात् संस्था के शासन या संचालन में प्रत्येक व्यक्ति की भागीदारी सुनिश्चित होती है। इस संदर्भ में 'अब्राहम लिंकन के कथन सर्वोपरि हैं- 'प्रजातंत्र जनता द्वारा जनता के लिये जनता से चुनी सरकार है।' ("Democracy is the government of the people by the people for the people.") परन्तु आज जनतंत्र को शासन की केवल प्रणाली विशेष के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता अपितु उसे जीवन की एक विधि माना जाता है, एक ऐसी विधि जिसमें मनुष्य-मनुष्य से घनिष्टता रखता है तथा अपने हितों की रक्षा के साथ-साथ दूसरों के हितों की भी रक्षा करता है। इस संदर्भ में चेन (2007) ने अपने अध्ययन परिणामों में पाया कि प्रधानाचार्यों की शिक्षकों को साथ लेकर चलने की कार्यशैली का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। विद्यालयी संस्थितियों में जनतंत्रात्मक कौशलों से तात्पर्य संस्था में किसी समस्या अथवा कार्य के लिए निर्णय, नियोजन, सम्प्रेषण आदि में उस संस्था के समस्त कार्मिकों की भागीदारी सुनिश्चित हो अर्थात् संस्था के प्रत्येक कार्य में जनतंत्र के नियमों का पालन किया जाए। अत: संस्था प्रमुख या प्रधानाचार्य का जनतंत्रात्मक कौशलों में दक्ष होना नितांत आवश्यक है।

नौवें स्थान पर सहयोग कौशल को चिह्नित किया गया है। बंसल (1982), ने प्रबंधकीय निष्पादन से संबंधित अध्ययन में बताया कि सहयोग कौशल सफल प्रबंधकीय निष्पादन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। समन्वय प्रबंधन की आधारशिला है जिस पर समस्त संगठन का ढ़ांचा निर्भर होता है। यह प्रबंधन प्रक्रिया का सार है, समन्वय के द्वारा ही प्रयासों, दृष्टिकोणों, हितों के अन्तरों को समायोजित किया जा सकता है एवं इसी के द्वारा व्यक्तिगत लक्ष्यों एवं क्रियाओं को सामूहिक लक्ष्यों में संगठित किया जा सकता है। समन्वय के संदर्भ में डा. एफ.एल. ब्रेच ने कहा है ''समन्वय किसी प्रतिष्ठान के विभिन्न सदस्यों के मध्य इस प्रकार कार्य का आवंटन है जिससे उसमें परस्पर संतुलन एवं सहयोग बना रहे तथा यह अवलोकन करना है कि कार्य सदस्यों में पारस्परिक सुसंगति के साथ निष्पादित होता रहे।'' इस दृष्टि से

विद्यालय के प्रधानाचार्य को समन्वय एवं सहयोग के कौशलों में दक्ष होना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि संगठन में प्रत्येक स्तर पर उससे जुड़े हुए समस्त व्यक्तियों के मध्य परस्पर समन्वय की आवश्यकता होती है।

उपलब्ध संसाधनों के अधिकतम उपयोग संबंधी कौशलों को उत्तरदाताओं द्वारा केवल एक प्रतिक्रिया प्राप्त हुई है और इसे अंतिम स्थान पर रखा गया। विद्यालय संसाधन किसी भी शिक्षण संस्था का आधार है और शैक्षणिक कार्यक्रमों के सफल संचालन तथा संस्थागत निष्पादन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। हम प्राय: अनेक प्रधानाचार्यों को संसाधनों के अभाव की बात करते सुनते हैं परन्तु अनेक बार स्थिति इसके विपरीत होती है। विद्यालय में संसाधन तो उपलब्ध होते हैं पर संस्था प्रमुख के संसाधनों के अधिकतम उपयोग में दक्ष न होने पर वह उपलबध संसाधनों का बेहतर उपयोग नहीं कर पाता है। प्रधानाचार्य को जितनी आवश्यकता संसाधनों की व्यवस्था करने की है उससे कही ज्यादा आवश्यकता उपलब्ध संसाधनों के अधिकतम तथा बेहतर उपयोग उपयोग की है। अत: विद्यालय प्रधानाचार्यों को विभिन्न प्रबंधन कौशलों के दक्ष होने के साथ-ही-साथ उपलब्ध संसाधनों के अधिकतम उपयोग संबंधी कौशलों में दक्ष होना भी अत्यंत आवश्यक है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शिक्षा के क्षेत्र के प्रशासकों ने 10 प्रबंधन कौशलों को चिह्नित किया है जो कि वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य हेतु अत्यन्त प्रभावी एवं आवश्यक हैं। चिह्नित प्रबंधन कौशल हैं- नेतृत्व कौशल, नियोजन/संगठन कौशल, निर्णयन कौशल, मूल्यांकन कौशल, विरोध प्रबंधन कौशल, जनतंत्रात्मक कौशल, सहयोगात्मक कौशल, संसाधनों के अधिकतम उपयोग संबंधी कौशल।

शैक्षिक निहितार्थ

वर्तमान युग कौशल एवं दक्षता का युग है, फिर चाहे वे कौशल प्रबंधन से संबंधित हों, तकनीकी से संबंधित हों या फिर किसी अन्य क्षेत्र से। आज समाज के प्रत्येक क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के कौशलों में दक्ष कर्मियों की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। चूंकि शैक्षिक क्षेत्र में विद्यालय अत्यन्त ही महत्वपूर्ण संस्थाएं होती हैं क्योंकि विद्यालयी प्रक्रिया से होकर ही समाज के प्रत्येक क्षेत्र के लिए कार्मिक तैयार किय जाते हैं।

विद्यालयी व्यवस्था में प्रधानाचार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण इकाई होता है जिस पर संपूर्ण विद्यालयी गतिविधियां अवलम्बित होती हैं। इसीलिए वर्तमान महत्वाकांक्षी युग में विभिन्न प्रकार के प्रबंधन कौशलों में दक्ष प्रधानाचार्यों की प्रत्येक विद्यालय में आवश्यकता है क्योंकि विद्यालय केवल अध्ययन-अध्यापन के केन्द्र ही नहीं वरन् वे शिक्षार्थी का सर्वांगीण विकास कर संस्थागत निष्पादन सुनिश्चित करने वाली संस्थाएं हैं। अत: प्रस्तुत शोध पत्र द्वारा यह अन्वेषित करने का प्रयास किया गया है कि वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में वे कौन से प्रबंधन कौशल हैं जो प्रभावशाली या आवश्यक हैं। अत: प्रधाानाचार्यों की नियुक्ति के समय उनमें, उपर्युक्त प्रबंधन कौशलों की दक्षता सुनिश्चित की जा सकती है तथा सेवारत कार्मिकों में विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षणों एवं कार्यशालाओं के आयोजन द्वारा उक्त प्रबंधन कौशलों की दक्षता सुनिश्चित की जा सकती है।

संदर्भ

ओड, एल.के. (1991), *शैक्षिक प्रशासन,* जयपुर : राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी

त्यागी, आर.एस., *शैक्षिक प्रशासन में सतत् सुधार की आवश्यकता,* परिप्रेक्ष्य, नई दिल्ली : न्यूपा, दिसंबर-2007, अंक-3

दूबे, अशोक कुमार, (2008) *प्रशासनिक विचारधारायें,* नई दिल्ली : टाटा मैग्राहिल पब्लिशिंग कम्पनी

भटनागर, आर.पी. (2007), *शैक्षिक प्रशासन,* मेरठ : लायल बुक डिपो

सिंह, सत्यदेव (1991), शाला- प्रधानों की निर्णय निर्माण शैली का विश्लेषणात्मक अध्ययन, *भारतीय आधुनिक शिक्षा,* नई दिल्ली: एन.सी.ई.आर.टी., नं. 8, वाल्यूम-4, अप्रैल 1991

मुखोपाध्याय, मर्मर, *शिक्षा में सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबंधन,* नई दिल्ली: न्यूपा

कुमार, अमित तथा अग्रवाल, अर्चना (2012), *प्रभावी विद्यात्मक प्रबंधन हेतु प्रधानाचार्य में अपेक्षित कौशल,* परिप्रेक्ष्य, नई दिल्ली : न्यूपा, वर्ष-19, अंक-1, अप्रैल 2012

बंसल प्रेम चंद (1982), *सम कोरेलेट ऑफ मैनेजेरियल परफारमेंस* इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ टैक्नालॉजी इंडियन डिजरटेशन अब्स्ट्रैक्ट, जून-दिसंबर 1983, नई दिल्ली : आईसीएसएसआर

चेन, वाई.एच. (2007), *प्रिंसिपल्स डिस्ट्रीब्यूटेड लीडरशिप विहेवियर एंड देअर इम्पैक्ट्स ऑन स्टूडेंट स अचीवमेंट इन स्लैक्टेड एलिमेंट्री स्कूल्स इन टेक्सस,* डिस्ट्रीब्यूशन अब्स्ट्रैक्ट इंटरनेशनल, वाल्यूम-68, नं.-9

हाल्पिन, ए.डब्ल्यू., *थियोरी एंड रिसर्च इन एडमिशन,* न्यूयार्क : द मैकमिलन कम्पनी

मैकग्राथ, ई.एच. (2011), *बेसिक मैनेजेरियल फार ऑल,* नई दिल्ली : पीएचआई लर्निंग प्रा. लि.

मुमथास, एन.एस. एंड के. अब्दुल जलील (2008), *स्कूल लीडरशिप एंड आर्गेनाइजेशनल क्लाइमेट: ए रीग्रेशन अनालाइसिस,* एजुट्रैक्स : हैदराबाद, वाल्यूम-8, नं.1, सितंबर 2008

रॉबिन्स, स्टेफन पी, (1999), *आग्रेनाइजेशनल थ्योरी,* नई दिल्ली : प्रैक्टिस हॉल ऑफ इंडिया प्रा. लि.

सिंह, सुरेन्द्र (2003), *कम्यूनिकेशन इन आर्गेनाइजेशन,* लखनऊ : भारत बुक्स सेंटर

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 3, दिसंबर 2013

शोध टिप्पणी/संवाद

प्रारंभिक शिक्षा में लैंगिक असमानता की वर्तमान स्थिति

राजस्थान का केस अध्ययन

अनिल कुमार जैन* एवं **रजनी रंजन सिंह****

सारांश

एक मजबूत शिक्षा प्रत्येक राष्ट्र के विकास और समृद्धि का आधार होती है। प्रारंभिक शिक्षा बच्चों के जीवन के लिए प्रथम सीढ़ी है, जिसका सहारा लेकर वे आगे की ओर गतिशील होते हैं और अपने राष्ट्र के विकास में सहारा बनते हैं। सभी को अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा मिले इस बात पर लगातार जोर दिया जा रहा है और देश में पिछले एक दशक से प्रारम्भिक शिक्षा को सुदृढ़ करने के लिए आवश्यक कदम भी उठाये जा रहे हैं। राजस्थान देश में क्षेत्रफल की दृष्टि से पहला स्थान रखता है लेकिन 2011 की जनगणना के अनुसार राष्ट्रीय स्तर पर देखा जाये तो यहाँ की साक्षरता दर बहुत कम है साथ ही साथ महिलाओं की साक्षरता दर का विश्लेषण किया जाये तो पुरुषों के मुकाबले बहुत कम है। लैंगिक असमानता का यह स्तर राजस्थान में बहुत ज्यादा देखने को मिलता है। प्रारंभिक शिक्षा में भी लैंगिक असमानता व्याप्त है। लैंगिक असमानता की भयानक स्थिति को कैसे समाप्त किया जाये और प्रारंभिक शिक्षा को प्रत्येक बच्चे तक सुलभ और सार्वभौमिक बनाया जाये इसलिए जमीनी स्तर पर आवश्यक कदम उठाने होंगे।

प्रस्तुत शोधपत्र में देश एवं राजस्थान में प्रारंभिक शिक्षा की वर्तमान स्थिति का अध्ययन किया गया है जिसके अंतर्गत राज्य में प्रारम्भिक शिक्षा में लैंगिक असमानता की वास्तविक स्थिति, विद्यालयों एवं उनमें आधारभूत सुविधाओं

* पी-एच.डी. छात्र, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, रावतभाटा रोड, कोटा
** सह आचार्य, शिक्षा विभाग, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, रावतभाटा रोड, कोटा

की स्थिति, बालक–बालिकाओं के नामांकन की स्थिति व बालिकाओं के नामांकन की कमी के वास्तविक कारणों एवं राज्य में क्रियानवित जेन्डर सम्बन्ध ी योजनाओं पर प्रकाश डालते हुए उनका विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है ताकि राजस्थान में प्रारम्भिक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने, बालिका शिक्षा के स्तर को बढाने एवं लैंगिक असमानता को दूर करने हेतु आवश्यक कदम उठाए जा सके।

प्रस्तावना

भारतीय समाज में पुरुष को परिवार में सर्वोपरि माना जाता है। वंश पिता से पुत्र की दिशा में चलता है। मोक्ष प्राप्ति के लिए पुत्र का जन्म महत्वपूर्ण माना जाता है। आज भी लड़की के जन्म पर परिवारों में शोक छा जाता है और लड़कों के जन्म पर खुशी (शर्मा, ऋचा 2011)। आज स्थिति इस कदर बढ़ चुकी है कि अब व्यक्ति गर्भ में पल रहे कन्या भ्रूण की हत्या से लेकर अग्नि में महिलाओं को जलाने में तनिक भी संकोच नहीं कर रहा है। लड़कियों के साथ जन्म के बाद से ही भेदभाव किया जाने लगता है। उसे विद्यालय से वंचित कर घरेलू कार्य में लगा दिया जाता है और धीरे–धीरे बालक–बालिकाओं में भेदभाव इतना सुदृढ़ हो जाता है कि व्यवस्था की आड़ में विभेदीकरण का दौर शुरू हो जाता है जिसकी जड़ें धीरे–धीरे मजबूत होती चली जाती हैं और लिंग भेद शुरू हो जाता है। शुरू से ही लड़कियों को शिक्षा, उन्नति, विकास और निर्णयाधिकार से वंचित रखा गया है। राजस्थान में लिंगानुपात (1000–928) व शैक्षिक अनुपात (पुरुष साक्षरता 79.19% एवं महिला साक्षरता 47.76%) भारतीय जनगणना, (2011) से यह स्पष्ट होता है कि लैंगिक विषमताएँ राज्य में कितनी स्थायी हो चुकी हैं। कहीं न कहीं समाज के लोगों की मानसिकता, सामाजिक सरंचनाएं व व्यवस्थाएँ बालक–बालिका के मध्य विभेद उत्पन्न कर देती हैं जिसके कारण बालिकाएं शिक्षा सम्बन्धी अधिकारों को समान रूप से पाने में वंचित रह जाती हैं और लैंगिक असमानता जैसी समस्या विकराल रूप धारण कर लेती है।

राजस्थान में शिक्षा के प्रारंभिक स्तर पर प्रकाश डाला जाये तो ज्ञात होता है कि वर्ष 2013–14 में राज्य में 8 राजकीय विशिष्ट विद्यालय (पूर्व प्राथमिक कक्षा से 8 तक) तथा कुल 55103 राजकीय एवं गैर–राजकीय प्राथमिक विद्यालय और 56106 राजकीय एवं गैर–राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय संचालित हैं। निम्न विद्यालयों में वर्ष 2013–14 में नामांकित बालक–बालिकाओं की स्थिति का आंकलन किया जाये तो

पता चलता है कि कुल 136.23 लाख (72.88 लाख बालक एवं 63.35 लाख बालिकाएं) बालक–बालिकाएं नामांकित हैं जिनमें बालिकाओं का प्रतिशत 46.50 है। हालांकि बालिका नामांकन प्रतिशत में वर्ष दर वृद्धि हो रही है लेकिन किन्हीं कारणों की वजह से वे अपनी पढाई को आगे जारी नहीं रख पाती और बीच में ही पढाई छोड़ देती हैं। वर्तमान में बालिका शिक्षा के क्षेत्र में विशेष उपलब्धि हासिल नहीं हो पाई है। बालिका शिक्षा की दशा अभी भी शोचनीय है। समकालीन समाज और शिक्षा व्यवस्था के लिये सामाजिक व्यवस्था में लैंगिक समानता लाना एक बहुत बड़ी चुनौती है। निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 (आरटीई) और भारत के संविधान में अनुच्छेद '21–क' अप्रैल 1, 2010 से प्रचालन में आ गया है। इसके फलस्वरूप 6–14 वर्ष की आयु समूह के सभी बच्चों के लिए प्रारंभिक शिक्षा मौलिक अधिकार बन गया है (मानव संसाधान विकास मंत्रालय, भारत सरकार)। निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 का अर्थ है कि प्रत्येक बच्चे को संतोषप्रद और साम्यपूर्ण गुणवत्ता की पूर्णकालिक प्रारंभिक शिक्षा का अधिकार प्रदान किया जाये (शिक्षा का अधिकार–2009) क्योंकि इस चरण के शुरुआत में बच्चे का पढ़ने, लिखने और अंकगणित से औपचारिक परिचय होता है और इस चरण का अंत जैविक–भौतिक विज्ञान और सामाजिक विज्ञान जैसे विषयों के औपचारिक परिचय से होता है। आठ सालों की यह अवधि वह समय है जब महत्वपूर्ण संज्ञानात्मक विकास होता है और विवेक को आकार मिलता है, सामाजिक कौशलों, बुद्धि एवं काम के लिए जरूरी कौशलों और अभिवृतियों का भी विकास होता है (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005)। इस अवस्था से बच्चों में बालक या बालिका होने का बोध उत्पन्न होता है एवं ये दोनों प्राकृतिक रूप से एक–दूसरे के प्रति नकारात्मक होने लगते हैं। इसलिए शुरुआत से ही हमें उनको इस बात का बोध कराने का प्रयत्न करना होगा कि बच्चे (बालक–बालिका) बाह्य रूप से एक दूसरे से भिन्न दिखकर भी समान हैं। अतः प्रारंभिक कक्षाओं पर लैंगिक सुग्राह्यता का ज्ञान बच्चों को देने की आवश्यकता है ताकि सही नींव पर ही मजबूत इमारत का निर्माण हो सके (आर्य, अल्का और पांडेय, प्रेमा 2005)। प्रारंभिक शिक्षा में ही बच्चे का समुचित विकास निर्भर करता है इसलिए समाज के वंचित और पिछड़े वर्गों विशेष रूप से लड़कियों और बालश्रम करने वाले बच्चों के लिए प्रारंभिक शिक्षा के कार्यक्रमों का लाभ मिलना चाहिये। प्रारंभिक स्तर के साथ–साथ सभी स्तरों पर विद्यालयों, शिक्षक–शिक्षिकाओं, अभिभावकों एवं समाज के लोगों को

आगे आने वाली पीढियों को संवेदनशील बनाने में प्रमुख भूमिका निभानी होगी और सरकार द्वारा क्रियान्वित शैक्षिक योजनाओं और नीतियों को भी जमीनी स्तर पर सुचारू ढंग से क्रियान्वयन करने की आवश्यकता है।

शोधपत्र में प्रयुक्त प्रत्ययों का अर्थ

शिक्षा का अर्थ

शिक्षा शब्द संस्कृत कि शिक्ष धातु से बना है और इसका अर्थ है सीखना। शिक्षा का महत्व इतना अधिक था कि इसे मनुष्य का तीसरा नेत्र कहा गया है – ज्ञानं मनुजस्य तृतीय नेत्रं। प्राचीन काल में भारतीय मनीषियों ने 'सा विद्या या विमुक्तये' कहकर शिक्षा का लक्ष्य निर्धारित कर दिया था। शिक्षा ही मानवीय प्रगति का आधार है, जिस देश में शिक्षा सर्वसुलभ होगी, वही देश तेजी से तरक्की कर सकता है। डा राधाकृष्णन ने लिखा है कि– "शिक्षा को मनुष्य और समाज का निर्माण करना चाहिये। इस कार्य को किये बिना शिक्षा अनुर्वर और अपूर्ण है" (पाठक, पी.डी. 2012)। इसलिए बच्चों की शिक्षा पर ध्यान दिया जाना चाहिए। वैश्विक स्तर पर भी इस तथ्य को स्वीकार किया गया है कि शिक्षा से सशक्तिकरण होता है तथा जीवनपर्यन्त व निरंतर शिक्षा मानव जीवन के स्तर को उन्नत करती है (छापडिया, मनोज 2008)। और यह तभी सम्भव है जब लड़का–लड़की दोनों को समान रूप से प्रारंभिक शिक्षा प्रदान की जाये।

प्रारंभिक शिक्षा

प्रयुक्त शोधपत्र में वे बालक– बालिकाएं जिनको छह वर्ष की आयु के पश्चात कक्षा 1 से 8 तक की अनिवार्य शिक्षा औपचारिक रूप से विद्यालय में प्रदान की जा रही है या प्राप्त कर रहे हैं उनकी शिक्षा को प्रारंभिक शिक्षा (एलीमेंट्री एजूकेशन) माना गया है। प्रारंभिक शिक्षा स्तर शिक्षा प्रणाली का एक महत वपूर्ण भाग है यह प्रत्येक बच्चे के विकास हेतु नींव के रूप में जरुरी है। परिचालन स्तर पर, प्रारंभिक शिक्षा प्रणाली को दो भागों में बांटा गया है: (1) प्राथमिक शिक्षा (कक्षा 1 से 5), (2) उच्च–प्राथमिक शिक्षा (कक्षा 6 से 8) यह विभाजन प्राथमिक शिक्षा के सामान्य परिदृश्य पर लागू होता है (मानव संसाधान विकास मंत्रालय, भारत सरकार)।

जेंडर

जेंडर 'लिंग' के सांस्कृतिक चर का एक पदानुक्रमित युग्म के रूप में विस्तार है। जेंडर 'लिंग' से अलग है और इंसान के सामाजिक विशेषताओं के लिये संदर्भित है, न कि

जैविक। यह निश्चित करता है कि, सामाजिक संरचना के अनुसार स्त्री और पुरुष को समाज–संस्कृति के कौन से मूल्य और शक्तियाँ प्राप्त हों।

लैंगिक असमानता

प्रयुक्त शोधपत्र में प्रारंभिक शिक्षा के अन्तर्गत शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में बालक–बालिका में विभेदन के फलस्वरूप शैक्षिक उपलब्धि में अंतर को लैंगिक असमानता की संज्ञा दी गयी है। अर्थात बालक–बालिकाओं को अवसरों व अधिकारों की दृष्टि से असमान समझना लैंगिक असमानता कहा जाता है।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध–पत्र में निम्न उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं:

- देश में प्रारंभिक शिक्षा की वर्तमान स्थिति का अध्ययन करना।
- राजस्थान में प्रारम्भिक शिक्षा में लैंगिक असमानता की वास्तविक स्थिति का अध्ययन करना।
- राजस्थान में प्रारम्भिक शिक्षा में लैंगिक असमानता के वास्तविक कारणों को जानने हेतु अध्ययन करना।
- राजस्थान में प्रारम्भिक शिक्षा में बालक–बालिकाओं के नामांकन की स्थिति का अध्ययन करना।
- राजस्थान में प्रारम्भिक शिक्षा में बालिकाओं के नामांकन की कमी के कारणों का अध्ययन करना।
- राजस्थान में विद्यालयों की संख्यात्मक स्थिति का अध्ययन करना।
- विद्यालयों में आधारभूत सुविधाओं की स्थिति का अध्ययन करना।

प्रस्तुत अध्ययन में निम्न उद्देश्यों का निर्धारण किया गया है ताकि प्रारंभिक शिक्षा की वर्तमान स्थिति को जान कर उसमें व्याप्त लैंगिक असमानता को दूर किया जा सके और शिक्षा के स्तर को बढ़ाया जा सके।

देश में प्रारंभिक शिक्षा के हालात

भारत में जितने बच्चे विद्यालय जाते हैं, करीब–करीब उतने ही विद्यालय नहीं जा पाते हैं। इनमें ग्रामीण बच्चों की और बालिकाओं की संख्या सबसे ज्यादा है। बच्चों के विद्यालय नहीं जाने की सबसे बड़ी वजह है– गरीबी, जिसके कारण अभिभावक बच्चों

को विद्यालय भेजने की बजाय काम पर लगा देते हैं। विद्यालय की घर से ज्यादा दूरी, उसमें अधिकांश साधन-सुविधाओं का नहीं होना, सुरक्षा का अभाव और महंगे निजी स्कूल भी बच्चियों को विद्यालय न भेजने के खास कारण हैं। अधिकतर बच्चों की शिक्षा सरकारी विद्यालयों में होती है और इन्हीं विद्यालयों की बदहाली के कारण बच्चों की नीवं कमजोर हो जाती है। विद्यालयों में पर्याप्त शिक्षक भी नहीं हैं जो हैं वे नियमित विद्यालय नहीं जाते या रूचि से नहीं पढ़ाते। इसके बावजूद बच्चे अपनी योग्यता से पढ़ रहे हैं और निजी विद्यालयों के विद्यार्थियों से प्रतिस्पर्धा भी कर रहे हैं। सरकारी विद्यालयों में पढकर हर साल प्रशासनिक सेवाओं में भी शामिल होने वालों की संख्या से जाहिर है कि यह देश प्रतिभा की खान है बस जरूरत है तो खान से हीरे तराशने वाली व्यवस्था की। देश में अरबों-खरबों रुपए के सरकारी खर्च के बावजूद भी बच्चे विद्यालय

तालिका-1
विद्यालय (प्रा. वि. एवं उ. प्रा. वि.) की संख्या

क्र. स.	वर्ष	प्रा. वि.	उ. प्रा. वि.	योग
1.	2000-01	44894	19768	64662
2.	2001-02	51289	21217	72506
3.	2002-03	55766	23098	78864
4.	2003-04	55757	23942	79699
5.	2004-05	55942	26201	82143
6.	2005-06	56573	28955	85528
7.	2006-07	56752	30392	87144
8.	2007-08	54033	47801	101834
9.	2008-09	51732	49669	101401
10.	2009-10	51724	50768	102470
11.	2010-11	49853	51955	101808
12.	2011-12	51137	55507	106644
13.	2012-13	53235	56491	109726
14.	2013-14	55103	56106	111209

स्रोत: प्रारम्भिक शिक्षा निदेशालय, बीकानेर, राजस्थान 2013-14

नहीं जाते हैं। इसके पीछे निम्न कारण हैं जैसे– 37 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में ही 30 विद्यार्थियों पर एक शिक्षक है शेष में यह अनुपात कम है। 1.19 करोड बच्चे विद्यालय से बहार हैं। प्रतिवर्ष 74.70 लाख बच्चे पढ़ाई बीच में छोड देते हैं। 27 प्रतिशत बच्चे पांचवीं तक और 40.6 प्रतिशत बच्चे आठवीं तक विद्यालय छोड़ देते हैं। 48 प्रतिशत बच्चे आर्थिक कारणों से या घरेलु काम में मदद के लिए छोड़ते हैं विद्यालय, 20 प्रतिशत बच्चों को पढ़ाई रुचिकर नहीं लगती है इसलिए मुहं मोड़ लेते हैं, 12 प्रतिशत बच्चों को परिवार के पलायन की वजह से, 05 प्रतिशत बच्चे पहुंच स्थल से विद्यालय दूर होने की वजह से तथा 5.3 प्रतिशत बच्चे विद्यालय इसलिए छोड़ देते हैं कि वहां पढ़ाई अच्छी नहीं होती (पत्रिका, 29 जून 2014)। वर्ष 2013 में प्रकाशित एक गैर–सरकारी संगठन *प्रथम* की रिपोर्ट से भारत के अनुसार प्राथमिक शिक्षा के बारे में यह अनुमान लगा सकते हैं कि–

- 6–14 वर्ष के बच्चों के दाखिले तो भारी संख्या में हो रहे हैं लेकिन विद्यालय न पहुँचने वाले बच्चों का अनुपात बढ़ा है, विशेषकर 11–14 वर्ष की बालिकाओं के मामले में।
- कक्षा–1 के लगभग आधे बच्चे किसी भी भाषा का एक भी अक्षर नहीं पढ़ पाते।
- 57 प्रतिशत बच्चे अंग्रेजी नहीं पढ़ सकते और 40 प्रतिशत बच्चे 1–9 तक की संख्याओं को नहीं पहचान पाते।
- रिपोर्ट के अनुसार, कक्षा 1–5 तक के 12 प्रतिशत बच्चे एक भी अक्षर नहीं पढ़ पाते और 10.9 प्रतिशत बच्चे 1–9 तक के अंकों को नहीं पहचान पाते।
- 7.74 लाख अध्यापकों के पास पढ़ाने के लिए जरूरी योग्यता नहीं है।
- देश के 50 प्रतिशत से अधिक विद्यालयों में शिक्षक पूरे नहीं हैं।

सर्वमान्य है कि सविधान के नीति निर्देशक तत्व के अन्तर्गत अनुच्छेद–45 के अनुसार शिक्षा से संबंधित निर्धारित लक्ष्य निर्धारित समय 1960 ई. तक पूरा नहीं हो सका। यहाँ तक कि 1974 तक भी संवैधानिक नीति निर्देशक तत्व को पूरा करने में सफलता नहीं मिली, किन्तु पाचवीं पंचवर्षीय योजना में रखे प्रयोजन के मूल को हम कभी नहीं भुला सकते, जिसमें प्राथमिक शिक्षा के विकास पर काफी बजट रखा गया। प्रयास जारी रहने के लक्ष्य प्राप्ति में समस्याओं एवं बाधाओं का समाधान काफी हद तक किया गया। 1980 तक 6 से 11 वर्ष की आयु के बच्चों का 99 प्रतिशत और 11 से 14 वर्ष तक के

बच्चों का लगभग 47 प्रतिशत सम्मिलित किया गया। आचार्य, रामविलास (2012). लेकिन वास्तविक स्थिति यह है कि इस समय भी लक्ष्य की पूर्ति नहीं हो पाई है।

राजस्थान का वर्तमान परिदृश्य

राजस्थान क्षेत्रफल (3,42,239 वर्ग कि.मी.) की दृष्टि से देश का सबसे बड़ा राज्य है इसमें देश की 5.66 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। राज्य की कुल जनसंख्या 6,85,48,437 है जिसमें पुरुषों व महिलाओं की संख्या क्रमशः 35,550,997 व 32,997,440 है। राज्य की कुल जनसंख्या में 6–14 वर्ष के बच्चों की संख्या 11,970,325 है। पुरुषों व महिलाओं का लिंग अनुपात 1000 : 928 है। राज्य में 7 संभाग, 33 जिले, 244 ब्लाक, 249 पंचायत, 244 तहसील, 9177 ग्राम पंचायत, 44,672 गांव हैं। भारतीय जनगणना 2011 के अनुसार भारत में साक्षरता की कुल दर 74.04% है, जिसमें पुरुष साक्षरता 82.14% एवं महिला साक्षरता 65.46% है जबकि राजस्थान में साक्षरता की दर 66.11% है, जिसमें पुरुष साक्षरता की दर 79.19% एवं महिला साक्षरता की दर 47.76% है। राजस्थान में सर्वाधिक साक्षरता कोटा 76.56% एवं न्यूनतम साक्षरता जालौर 54.86% जिले में हैं। सर्वाधिक पुरुष साक्षरता झुंझुनू 86.90% एवं न्यूनतम प्रतापगढ़ 69.5% में है तथा सर्वाधिक महिला साक्षरता कोटा 65.9% एवं न्यूनतम जालौर 38.5% में है

भारतीय जनगणना, (2011)।

ग्राफ–1

भारत एवं राजस्थान की साक्षरता दर

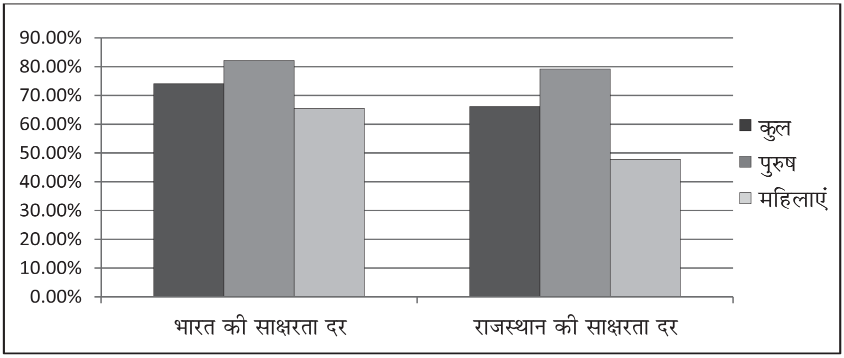

स्रोत : भारतीय जनगणना 2011

ग्राफ–1 में दर्शित आंकड़ों के आधार पर कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय स्तर पर तुलना करने पर यह पाते हैं कि राजस्थान में पुरुष और महिला के बीच शिक्षा में लैंगिक अंतर

सर्वाधिक देखने को मिलता है जहाँ पर पुरुषों की साक्षरता का दर 76% एवं महिलाओं की साक्षरता दर केवल 44% हैं। राजस्थान में लिंगानुपात व साक्षरता के स्तर का आकलन करने के बावजूद कह सकते हैं कि लैंगिक असमानता किस तरह अपना भयानक रूप लिए हुए है।

राजस्थान में प्रारम्भिक शिक्षा में लैंगिक असमानता की वास्तविक स्थिति (वर्ष 2013–14)

राजस्थान में राजकीय एवं गैर–राजकीय प्राथमिक और उच्च प्राथमिक विद्यालयों में नामांकित बालक–बालिकाओं की स्थिति का आंकलन किया जाये तो पता चलता है कि वर्ष 2013–14 में नामांकित बालक–बालिकाओं की कुल 136.23 लाख बालक–बालिकाएं नामांकित हैं जिसमें बालकों की संख्या 72.88 लाख एवं बालिकाओं की संख्या 63.35 लाख है। अर्थात बालिकाओं का प्रतिशत 46.50 और बालकों का प्रतिशत 53.50 है।

ग्राफ–2

राजस्थान में प्रारंभिक शिक्षा में लैंगिक असमानता की स्थिति (2013–14)

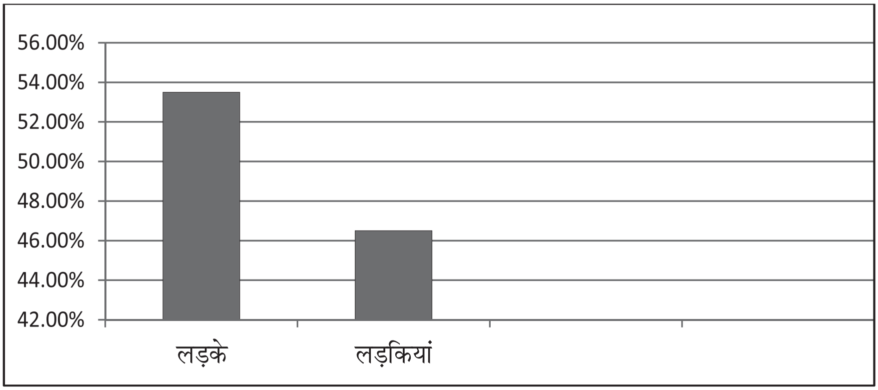

स्रोत : प्रारम्भिक शिक्षा निदेशालय बीकानेर, राजस्थान 2013-14

ग्राफ–2 में दर्शित आंकड़ों के आधार पर कहा जा सकता है कि वर्ष 2013–14 में राजस्थान में बालका–बालिकाओं में प्रारंभिक शिक्षा में लैंगिक असमानता व्याप्त है जहां एक ओर 72.88 लाख बालकों का नामांकन हुआ है वहीं 63.35 लाख बालिकाओं का नामांकन शामिल है। उक्त आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि लैंगिक असमानता आजादी के 67 साल बाद भी अपना रुख अपनाये हुए है।

राजस्थान में प्रारम्भिक शिक्षा में लैंगिक असमानता के वास्तविक कारण

गाँधीजी ने महिलाओं की शिक्षा पर जोर देते हुए कहा है कि– ''अगर पुरुष शिक्षित होता है तो वह केवल व्यक्तिगत जीवन के लिए शिक्षित होता है, लेकिन यदि महिला शिक्षित होती है तो पूरा परिवार शिक्षित माना जाता है'' (बत्रा, उर्मिला 2012)। राजस्थान में प्रारम्भिक शिक्षा में लैंगिक असमानता के पीछे गरीबी, विद्यालयों में आधारभूत सुविधाओं का अभाव, सुरक्षा का अभाव, शैक्षिक योजनाओं का उचित कार्यान्वयन न होना, अविभावकों में जागरूकता का अभाव, समाज के लोगों की संकीर्ण विचारधाराएं, मानसिकता, सामाजिक सरंचनाएं व व्यवस्थाएँ आदि कई कारण हैं जो बालक–बालिका के मध्य विभेद उत्पन्न कर देते हैं जिसके कारण बालिकाएं शिक्षा सम्बन्धी अधिकारों को समान रूप से पाने में वंचित रह जाती है और लैंगिक असमानता जैसी विकराल समस्या उत्पन्न हो जाती है। बालकों को आँख का तारा समझकर उन्हें विद्यालयों में भेज दिया जाता है और बालिकाओं को घरेलू कार्यों में लगा दिया जाता है। आज माँ–बाप की पुत्र प्राप्ति लालसा भी इतनी बढ़ चुकी है कि गर्भ में पल रही लड़की को जन्म से पहले ही खत्म करवा दिया जाता है जिससे बालिका जन्म दर में कमी आयी है और इसी का असर राजस्थान के लिंगानुपात के साथ–साथ साक्षरता दर पर भी पड़ा है। यद्यपि संविधान द्वारा समान अधिकार दिए जाते हैं फिर भी जब व्यवहार में समाज, जाति, धर्म, लिंग या अन्य किसी कारण से हम परस्पर भेदभावपूर्ण व्यवहार करते हैं व उनके खान–पान तथा शिक्षा पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता है। जहाँ एक ओर परिवार में माता–पिता अपने पुत्र को आँखों का तारा समझकर उसे उच्च शिक्षा दिलाने में प्रयासरत रहते हैं। वहीं दूसरी ओर लड़कियों को अभिशाप मानकर उनकी शिक्षा के बारे में सौ बार सोचते हैं। लड़कियों को लड़कों जैसी आजादी भी नहीं दी जाती है। गाँव व शहर में उच्च शिक्षा की व्यवस्था न होने के कारण अनेक लड़कियां शिक्षा से वंचित रह जाती हैं। अत: कहा जा सकता है कि राजस्थान में लड़कियों के पिछड़ेपन के कारणों में समाजीकरण की प्रक्रिया में व्याप्त लैंगिक भेदभाव मुख्य है।

राजस्थान में नामांकित बालक–बालिकाओं की स्थिति

राजस्थान में प्रारंभिक शिक्षा में वर्ष 2013–14 में बालकों की संख्या 72.88 लाख एवं बालिकाओं की संख्या 63.35 लाख है। उक्त विद्यालयों में वर्ष 2013–14 में नामांकित बालक–बालिकाओं की स्थिति का आकलन किया जाये तो पता चलता है कि बालकों की संख्या 72.88 लाख एवं बालिकाओं की संख्या 63.35 लाख है। कुल 136.23 लाख बालक–बालिकाएं नामांकित हैं जिसमें बालिकाओं का प्रतिशत 46.50 है।

ग्राफ–3

राजस्थान में प्रतिवर्ष नामांकित विद्यार्थियों की संख्या (लाखों में)

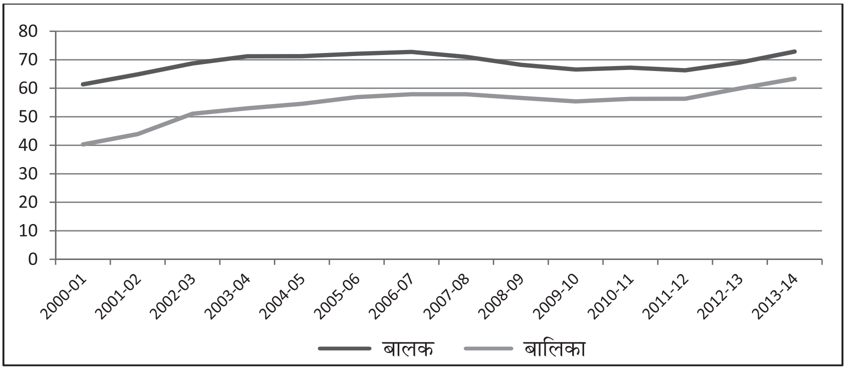

स्रोत : प्रारम्भिक शिक्षा निदेशालय बीकानेर, राजस्थान 2013–14

ग्राफ–3 के आंकड़ों के अनुसार राजस्थान में राजकीय एवं गैर–राजकीय प्राथमिक और उच्च प्राथमिक विद्यालयों में नामांकित बालक–बालिकाओं की स्थिति का आकलन किया जाये तो पता चलता है कि वर्ष 2000–01 की तुलना में वर्ष 2013–14 में नामांकित बालक–बालिकाओं की कुल संख्या में बढ़ोतरी हुई है। प्रतिवर्ष बालकों के साथ–साथ बालिकाओं का नामांकन बढ़ रहा है जो कि प्रशंसनीय है लेकिन जिस दर से बालकों का नामांकन बढ़ रहा है उस दर से बालिकाओं की नामांकन दर बहुत कम है।

ग्राफ–4

राजस्थान में 2013–14 में जिलेवार कुल नामांकन (राजकीय और गैर राजकीय विद्यालयों में)

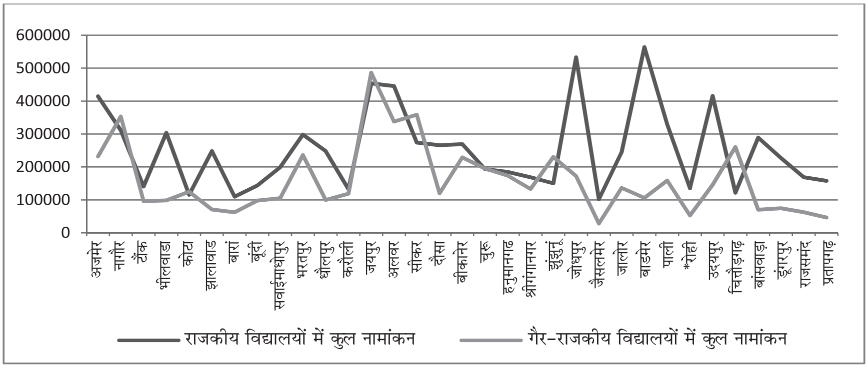

स्रोत : प्रारम्भिक शिक्षा निदेशालय बीकानेर, राजस्थान 2013–14

ग्राफ–4 में दर्शित आंकड़ों का विश्लेषण किया जाये तो ज्ञात होता है कि वर्ष 2013–14 में राजस्थान में आयु वर्ग 6–14 के बालक–बालिकाओं के जिलेवार नामांकन की स्थिति राजकीय विद्यालयों में बाड़मेर जिले में बालक (303640) एवं बालिकाओं (260419) का नामांकन सर्वाधिक है तथा जैसलमेर जिले में बालक (52710) एवं बालिकाओं (48964) का नामांकन सबसे कम है। इसी प्रकार गैर–राजकीय विद्यालयों में आयु वर्ग 6–14 के बालक–बालिकाओं के जिलेवार नामांकन में बालक (270822) बालिकाओं (215178) का नामांकन सर्वाधिक है तथा जैसलमेर जिले में बालक (19520) एवं बालिकाओं (8441) का नामांकन सबसे कम है।

तालिका–2
विद्यालय (प्रा.वि. एवं उ.प्रा.वि.) में नामांकित बालक–बालिकाओं की स्थिति (लाखों में)

क्र. स.	वर्ष	बालक	बालिका	बालिका प्रतिशत	योग
1.	2000–01	61.36	40.32	39.65	101.68
2.	2001–02	64.86	43.97	40.40	108.83
3.	2002–03	68.70	51.09	42.65	119.79
4.	2003–04	71.23	52.99	43.00	124.22
5.	2004–05	71.27	54.57	43.36	125.84
6.	2005–06	72.10	56.91	44.11	129.01
7.	2006–07	72.77	57.89	44.31	130.66
8.	2007–08	71.04	57.92	44.91	128.96
9.	2008–09	68.24	56.62	45.35	124.86
10.	2009–10	66.58	55.42	45.43	122.00
11.	2010–11	67.24	56.28	45.43	123.52
12.	2011–12	66.28	56.34	45.95	122.62
13.	2012–13	69.06	59.96	46.48	129.02
14.	2013–14	72.88	63.35	46.50	136.23

स्रोत : प्रारम्भिक शिक्षा निदेशालय बीकानेर, राजस्थान 2013–14

ग्राफ–5
वर्ष 2013–14 प्रवेशोत्सव में कुल नामांकन आयु वर्ग 6–14
(राजकीय और गैर राजकीय विद्यालयों में)

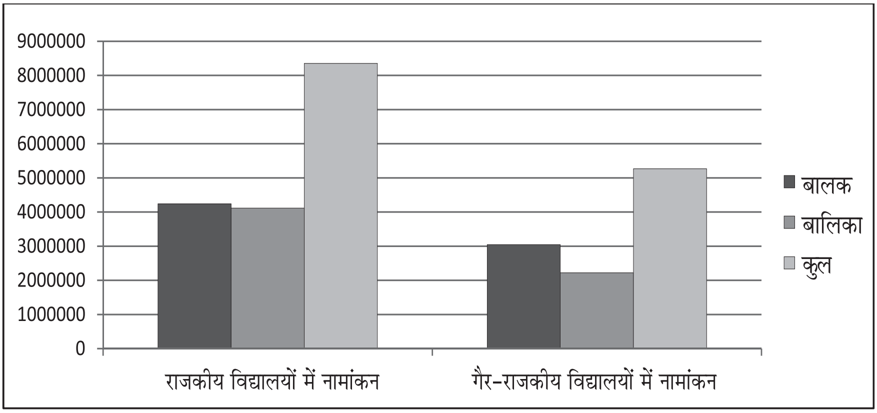

स्रोत : प्रारम्भिक शिक्षा निदेशालय बीकानेर, राजस्थान 2013–14

ग्राफ–5 में दर्शित आंकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि वर्ष 2013–2014 में राजकीय विद्यालयों में आयु वर्ग 6–14 के बालक–बालिकाओं का कुल नामांकन 8354856 था जिसमे बालकों का नामांकन 50.76% एवं बालिकाओं का नामांकन 49.24% रहा। गैर–राजकीय विद्यालयों में बालक–बालिकाओं का कुल नामांकन 5268231 था जिसमे बालकों का नामांकन 57.84% एवं बालिकाओं का नामांकन 42.16% रहा। अतः राजकीय और गैर राजकीय विद्यालयों के कुल नामांकन से ज्ञात होता है कि बालक–बालिकाओं के नामांकन में विषमता है। बालकों का नामांकन प्रतिशत 53.50% एवं बालिकाओं का 46.50% है। उक्त परिणाम लैंगिक असमानता को दृष्टिपात करते हैं।

राजस्थान में प्रारम्भिक शिक्षा में बालिकाओं के नामांकन की कमी के कारण

राजस्थान में विद्यालयी आधारभूत सुविधाओं जैसे– शौचालयों व पेयजल की व्यवस्था, स्कूलों में चार दीवारी, कक्षा– कक्ष, स्वयं का भवन आदि का अभाव, विद्यालय की घर से ज्यादा दूरी, महगें निजी स्कूल, अविभावकों में जागरूकता की कमी, गरीबी, सुरक्षा का अभाव, समाज के लोगों की संकीर्ण विचारधाराएं, मानसिकता, सामाजिक सरंचनाएं

तालिका-3
प्रवेशोत्सव कुल नामांकन (राजकीय एवं गैर-राजकीय विद्यालय) वर्ष 2013-2014

क्र. सं.	जिला	कुल नामांकन (राज. विद्यालय) आयु वर्ग 6 से 14			कुल नामांकन (गैर-राज. विद्यालय) आयु वर्ग 6 से 14		
		छात्र	छात्रा	योग	छात्र	छात्रा	योग
1.	अजमेर	221434	192886	414320	136469	95509	231978
2.	नागौर	143459	167507	310966	214089	139017	353106
3.	टौंक	63802	76425	140227	59442	36224	95666
4.	भीलवाडा	163088	140234	303322	52814	45411	98225
5.	कोटा	54593	60522	115115	73166	51541	124707
6.	झालावाड	140630	107452	248082	43129	27463	70592
7.	बारां	53766	55895	109661	37116	24842	62226
8.	बूंदी	64717	78632	143349	56739	41075	97814
9.	सवाईमाधोपुर	100847	97917	198764	59523	45411	104934
10.	भरतपुर	140733	157540	298273	138192	97603	235795
11.	धौलपुर	127614	120637	248251	57395	42236	99631
12.	करौली	60664	71763	132427	71694	46970	118664
13.	जयपुर	214782	238911	453693	270822	215178	486000
14.	अलवर	221431	224020	445451	200269	137486	337755
15.	सीकर	133829	140190	274019	196379	162042	358421
16.	दौसा	129422	136194	265616	65733	54050	119783
17.	बीकानेर	131615	137738	269353	132229	96775	229004
18.	चुरू	101849	91190	193039	110711	84406	195117
19.	हनुमानगढ	87804	96872	184676	98597	74785	173382
20.	श्रीगंगानगर	84325	84010	168335	74148	63870	132979
21.	झुंझुनूं	69902	80263	150165	134279	95979	230258
22.	जोधपुर	288618	244166	532784	95091	77026	172117

क्रमशः

23.	जैसलमेर	52710	48964	101674	19520	8441	27961
24.	जालोर	124964	120166	245130	89022	47308	136330
25.	बाडमेर	303640	260419	564059	70106	35799	105905
26.	पाली	173182	155951	329133	96552	62035	158587
27.	सिरोही	70916	64024	134940	30184	22131	52315
28.	उदयपुर	216982	198714	415696	82128	63516	145644
29.	चित्तौड़गढ़	63439	57984	121423	130325	129974	260299
30.	बांसवाड़ा	155226	133936	289162	42291	27637	69928
31.	डूंगरपुर	115522	111709	227231	43428	31053	74481
32.	राजसमंद	84001	84759	168760	38567	23799	62366
33.	प्रतापगढ़	81086	76674	157760	27412	18849	46261
	योग	4240592	4114264	8354856	3047561	2220670	5268231

स्रोत : प्रारम्भिक शिक्षा निदेशालय बीकानेर, राजस्थान 2013–14

व व्यवस्थाएँ तथा शैक्षिक योजनाओं का उचित क्रियान्वयन न होना भी बच्चियों को विद्यालय न भेजने के खास कारण हैं जिससे विद्यालयों में बालिकाओं के नामांकन में कमी आयी है तथा लैंगिक असमानता का स्तर बढ़ा है। इसलिए विद्यालयी आधारभूत सुविधाओं को पूरा करना, समाज के लोगों और अविभावकों में लड़कियों के प्रति संकीर्ण मानसिकता में बदलाव, सामाजिक सरंचनाएं व व्यवस्थाएँ में परिवर्तन, एवं शैक्षिक योजनाओं का जमीनी स्तर पर उचित क्रियान्वयन करना होगा जिससे बालिकाओं के नामांकन में वृद्धि व ठहराव लाया जा सके तभी राजस्थान में अनिवार्य तथा प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य को सार्थक किया जा सकेगा।

राजस्थान में विद्यालयों की संख्यात्मक स्थिति

बच्चों को शिक्षा से जोड़ने के लिए जगह–जगह विद्यालय खोले गए हैं ताकि कोई भी बच्चा शिक्षा से वंचित न रह सके। वर्तमान में राजस्थान में 8 राजकीय विशिष्ट विद्यालय (पूर्व प्राथमिक कक्षा से 8 तक) तथा 47524 राजकीय प्राथमिक विद्यालय तथा 26750 राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय संचालित हैं। इसके अतिरिक्त 7579 गैर–राजकीय प्राथमिक विद्यालय 29356 गैर–राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय हैं। अगर देखा जाये

2013–14 में कुल विद्यालयों की संख्या 111209 है जिसमें प्राथमिक विद्यालयों की संख्या 55103 व उच्च प्राथमिक विद्यालयों की संख्या 56106 है।

ग्राफ–6

राजस्थान में प्रतिवर्ष राजकीय और गैर राजकीय प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों की संख्या)

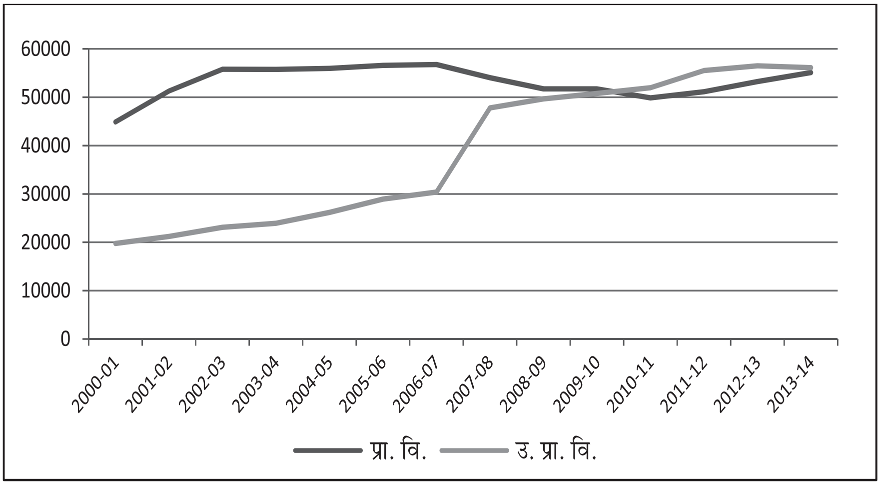

स्रोत: प्रारंभिक शिक्षा निदेशालय बीकानेर, राजस्थान 2013–14

ग्राफ–6 में दर्शित आंकड़ों के आधार पर कहा जा सकता है कि राजस्थान में प्राथमिक और उच्च प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में 2000–01 से निरंतर बढ़ोतरी हो रही है। 2013–14 में कुल विद्यालयों की संख्या 111209 है जो कि 2000–01 की तुलना में लगभग दुगनी है। वर्ष 2010–11 से वर्तमान स्थिति का आकलन किया जाये तो पता चलता है कि प्राथमिक विद्यालयों की संख्या उच्च प्राथमिक विद्यालयों की संख्या से लगातार कम होती चली गयी है। इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि बच्चों को शिक्षा से जोड़ने के लिए जगह–जगह विद्यालय तो खोले गए हैं किन्तु आशातीत परिवर्तन नहीं हो पाया है।

ग्राफ–7
राजस्थान में वर्ष 2013–14 में जिलेवार राजकीय प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों की संख्या

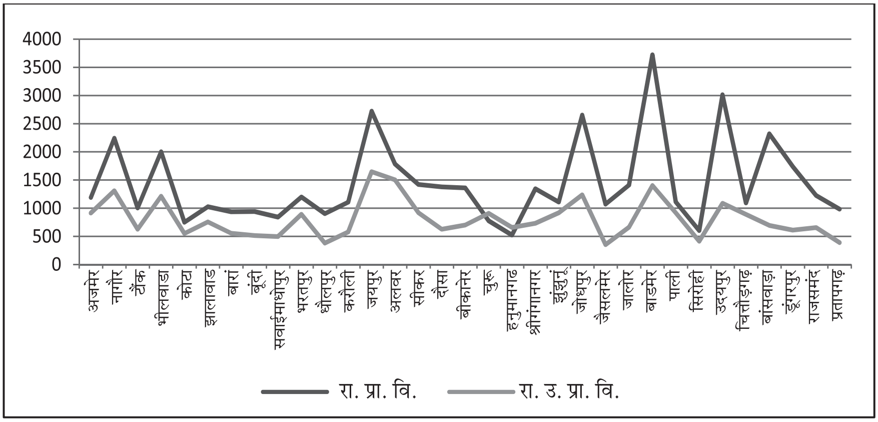

स्रोत : प्रारम्भिक शिक्षा निदेशालय बीकानेर, राजस्थान 2013–14

ग्राफ–7 में दर्शित आंकड़ों के आधार पर कहा जा सकता है कि राजकीय प्राथमिक विद्यालयों की सर्वाधिक संख्या बाड़मेर जिले में (3723) एवं हनुमानगढ़ जिले में (524) सबसे कम है जबकि राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालयों की सर्वाधिक संख्या जयपुर जिले में (1649) एवं सबसे कम जेसलमेर में (354) है।

तालिका–4
राजस्थान में प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों की संख्या (वर्ष 2013–14)

क्र. सं.	जिला	विशिष्ट राजकीय विद्यालय विद्यालय (पूर्व प्राथमिक से कक्षा 8 तक)	राजकीय विद्यालय		गैर राजकीय विद्यालय	
			प्राथमिक	उच्च प्राथमिक	प्राथमिक	उच्च प्राथमिक
1.	अजमेर	0	1191	916	510	898
2.	नागौर		2242	1311	233	1653
3.	टोंक		1003	627	112	746
4.	भीलवाडा		2002	1213	405	671
5.	कोटा	1	751	552	261	1004

क्रमशः

6.	झालावाड		1026	759	80	430
7.	बारां		936	555	135	546
8.	बूंदी		941	515	218	515
9.	सवाईमाधोपुर		843	497	281	725
10.	भरतपुर	1	1199	893	293	1436
11.	धौलपुर		903	380	78	567
12.	करौली		1107	579	168	541
13.	जयपुर	1	2723	1649	492	3588
14.	अलवर		1785	1505	223	2251
15.	सीकर		1421	922	117	1945
16.	दौसा		1378	627	115	891
17.	बीकानेर	1	1361	702	328	831
18.	चुरू		778	910	159	986
19.	हनुमानगढ		524	659	48	1049
20.	श्रीगंगानगर		1346	733	145	895
21.	झुंझुनूं		1110	919	147	1469
22.	जोधपुर	1	2653	1238	306	1306
23.	जैसलमेर		1072	354	94	152
24.	जालोर		1409	663	413	550
25.	बाडमेर		3723	1404	87	539
26.	पाली		1112	920	248	776
27.	सिरोही	1	603	415	127	242
28.	उदयपुर	2	3013	1089	414	650
29.	चित्तौड़गढ़		1094	890	333	574
30.	बांसवाड़ा		2322	695	251	316
31.	डूंगरपुर		1741	611	337	232
32.	राजसमंद		1227	658	290	264
33.	प्रतापगढ़		985	390	131	118
	योग	8	47524	26750	7579	29356

संकलित स्रोत– राज्य सरकार द्वारा जारी राजकीय विद्यालयों की स्वीकृति के आधार पर

ग्राफ–8

राजस्थान में वर्ष 2013–14 में जिलेवार गैर राजकीय प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों की संख्या

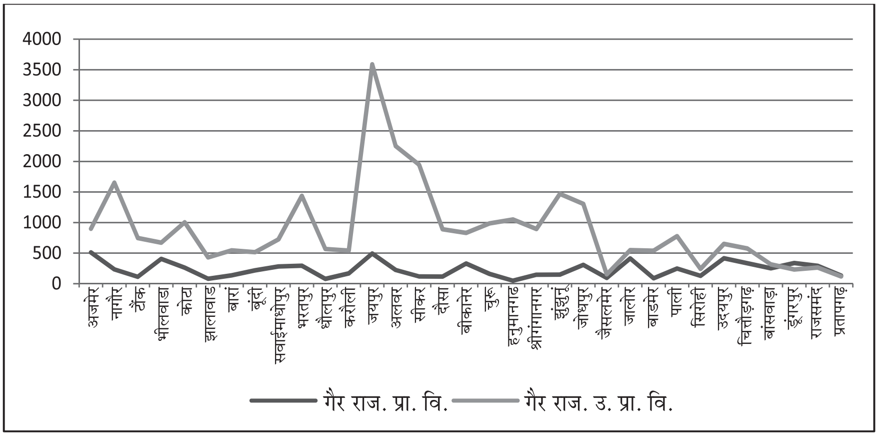

स्रोत : प्रारम्भिक शिक्षा निदेशालय बीकानेर, राजस्थान 2013–14

ग्राफ–8 में दर्शित आंकड़ों के आधार पर कहा जा सकता है कि गैर–राजकीय प्राथमिक विद्यालयों की सर्वाधिक संख्या अजमेर जिले में (510) एवं हनुमानगढ़ जिले में (48) सबसे कम है जबकि गैर–राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालयों की सर्वाधिक संख्या जयपुर जिले में (3588) एवं सबसे कम प्रतापगढ़ जिले में (118) है।

राजकीय एवं गैर राजकीय प्राथमिक व उच्च प्राथमिक विद्यालयों की तुलना करने पर यह पाते हैं कि वर्ष 2013–14 में राजकीय प्राथमिक विद्यालयों की संख्या राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालयों से ज्यादा है। जबकि गैर राजकीय प्राथमिक विद्यालयों की संख्या गैर राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालयों की संख्या से कम है। जयपुर, अलवर, बाड़मेर, जोधपुर, जिलों में विद्यालयों की संख्या अच्छी है तथा सिरोही, प्रतापगढ़, जैसलमेर, धौलपुर आदि जिलों में भी विद्यालयों की संख्यात्मक स्थिति अच्छी नहीं है अतः आधारभूत सुविधाओं से पूर्ण विद्यालय खोलने की आवश्यकता है।

विद्यालयों में आधारभूत सुविधाओं की स्थिति

विद्यालयों की संख्या में बढ़ोतरी करने के साथ–साथ विद्यालयों में आधारभूत सुविधाओं व सुरक्षा की ओर ध्यान देना होगा। अगर देखा जाये तो कुल 74274 राजकीय प्राथमिक व उच्च प्राथमिक विद्यालयों में से कुल 2727 विद्यालय (2428 प्राथमिक व 299 उच्च

प्राथमिक विद्यालय) ऐसे हैं जिनके स्वयं के राजकीय भवन उपलब्ध नहीं हैं, 3985 विद्यालय (3116 प्राथमिक व 869 उच्च प्राथमिक विद्यालय) ऐसे हैं जिनमें पेयजल की स्थाई व्यवस्था नहीं है, 2432 विद्यालय (2052 प्राथमिक व 380 उच्च प्राथमिक विद्यालय) ऐसे हैं जिनमें शौचालय की स्थाई व्यवस्था नहीं हैं, 15277 विद्यालय (8979 प्राथमिक व 6298 उच्च प्राथमिक विद्यालय) ऐसे हैं जिनमें पर्याप्त कक्षा–कक्ष नहीं हैं एवं 19560 विद्यालय (15850 प्राथमिक व 3710 उच्च प्राथमिक विद्यालय) ऐसे हैं जिनमें चार दीवारी नहीं है।

ग्राफ–9

राजस्थान में राजकीय प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों में आधारभूत सुविधाओं का अभाव

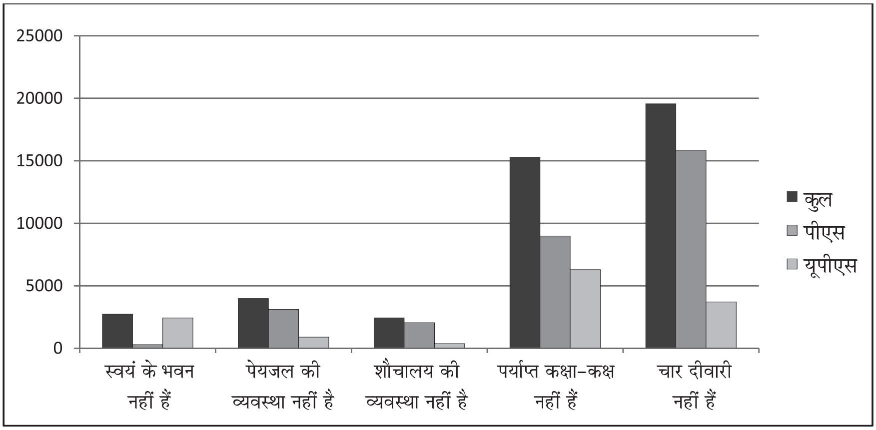

स्रोत : प्रारम्भिक शिक्षा निदेशालय बीकानेर, राजस्थान 2013–14

ग्राफ–9 में दर्शित राजकीय विद्यालयी अभावों की स्थिति के अनुसार कहा जा सकता है कि निम्न अभावों के कारण अधिकतर बच्चे राजकीय विद्यालयों से गैर–राजकीय विद्यालयों की तरफ अपना रुख मोड़ लेते हैं। गैर–राजकीय विद्यालयों में भी अधिक शुल्क होने के कारण लड़कियों को घर बैठा दिया जाता है और घरेलू कार्यों में लगा दिया जाता है जिस कारण वह शिक्षा से वंचित हो जाती हैं जो कि लैंगिक असमानता का परिचायक है। आधारभूत सुविधाओं व भौतिक संसाधनों के अभाव में शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को सुचारू ढंग से नहीं चलाया जा सकता है। विद्यालयों में बालिकाओं के स्थाई प्रवेश को सुनिश्चित करने के लिए और नामांकन में बढ़ोत्तरी करने हेतु राजकीय विद्यालयों में आधारभूत सुविधाओं के साथ–साथ सुरक्षात्मक माहौल प्रदान करना होगा।

तालिका–5
राजस्थान में राज. प्रा. एवं उ. प्रा. विद्यालयों में आधारभूत सुविधाओं से संबंधित सूचना

जिला	ऐसे राजकीय विद्यालय जिनमें स्वयं के भवन नहीं हैं			ऐसे राजकीय विद्यालय जिनमें पेयजल की स्थाई व्यवस्था नहीं है			ऐसे राजकीय विद्यालय जिनमें शौचालय की स्थाई व्यवस्था नहीं है			ऐसे राजकीय विद्यालय जिनमें पर्याप्त कक्षा-कक्ष नहीं है			ऐसे राजकीय विद्यालय जिनमें चार दीवारी नहीं है		
	ps	ups	योग	ps	ups	योग	ps	ups	योग	ps	ups	योग	ps	ups	योग
अजमेर	192	79	271	10	2	12	6	0	6	72	124	196	104	18	122
भीलवाडा	133	2	135	298	243	541	0	0	0	998	852	1850	902	288	1190
नागौर	115	5	120	118	17	135	311	92	403	223	304	527	854	212	1066
टोंक	62	10	72	40	17	57	0	0	0	45	185	230	285	92	377
अजमेर मंडल	502	96	598	466	279	745	317	92	409	1338	1465	2803	2145	610	2755
जयपुर	93	18	111	382	123	505	83	20	103	378	436	814	857	111	968
सीकर	144	3	147	173	57	230	87	2	89	230	108	338	638	167	805
अलवर	131	29	160	0	0	0	0	0	0	125	164	289	417	90	507
दौसा	62	0	62	204	41	245	63	0	63	48	58	106	420	92	512
जयपुर मंडल	430	50	480	759	221	980	233	22	255	781	766	1547	2332	460	2792
भरतपुर	44	7	51	199	85	284	34	0	34	194	166	360	321	94	415
सवाईमाधोपुर	40	0	40	27	25	52	0	0	0	188	288	476	109	99	208
करौली	57	0	57	433	88	521	119	9	128	80	42	122	60	15	75
धौलपुर	53	2	55	53	2	55	53	2	55	53	28	81	114	28	142
भरतपुर मंडल	194	9	203	712	200	912	206	11	217	515	524	1039	604	236	840
काकटा	57	4	61	42	0	42	51	0	51	103	106	209	56	14	70
बूंदी	40	4	44	41	4	45	40	4	44	30	43	73	540	44	584
झालावाड	47	0	47	0	0	0	0	0	0	109	103	212	349	149	498
बारां	27	0	27	0	0	0	0	0	0	101	308	409	358	78	436
कोटा मंडल	171	8	179	83	4	87	91	4	95	343	560	903	1303	285	1588
जोधपुर	113	27	140	58	19	77	0	0	0	332	201	533	731	107	838
पाली	72	3	75	63	20	83	88	24	112	811	268	1079	537	284	821

क्रमशः

सिरोही	43	4	47	56	6	63	61	0	61	80	72	152	103	11	114
बाड़मेर	268	10	278	122	21	143	734	198	932	2694	1113	3807	1208	90	1298
जैसलमेर	49	1	50	48	1	49	48	1	49	107	72	179	349	26	375
जालौर	74	2	76	74	0	74	74	0	74	189	202	391	147	29	176
जोधपुर मंडल	619	47	666	421	67	488	1005	223	1228	4213	1928	6141	3075	547	3622
उदयपुर	121	21	142	239	38	277	22	4	26	63	42	105	1109	703	1812
राजसमन्द	45	0	45	0	0	0	0	0	0	44	60	104	590	162	752
बांसवाडा	56	2	58	71	23	94	0	0	0	148	88	236	1468	107	1575
प्रतापगढ़	45	1	46	58	0	58	55	0	55	192	135	327	590	125	715
चित्तौड़गढ़	36	0	36	40	20	60	38	7	45	166	107	273	395	104	499
डूंगरपुर	27	0	27	154	0	154	0	0	0	20	68	88	897	62	959
उदयपुर मंडल	330	24	354	562	81	643	115	11	126	633	500	1133	5049	1263	6312
बीकानेर	17	41	58	39	5	44	0	0	0	666	27	693	686	93	779
चूरू	64	7	71	44	5	49	41	8	49	69	86	155	176	82	258
श्रीगंगानगर	17	5	22	0	0	0	0	0	0	102	156	258	266	65	331
झुंझुनू	59	12	71	30	7	37	44	9	53	263	244	507	159	23	182
हनुमानगढ़	25	0	25	0	0	0	0	0	0	56	42	98	55	46	101
चूरू मंडल	182	65	247	113	17	130	85	17	102	1156	555	1711	1342	309	1651
सर्वयोग	2428	299	2727	3116	869	3985	2052	380	2432	8979	6298	15277	15850	3710	19560

स्रोत : प्रारम्भिक शिक्षा निदेशालय बीकानेर, राजस्थान आधार दिनांक 31/12/2013

प्रारंभिक शिक्षा हेतु विभिन्न योजनाओं का क्रियान्वयन

सर्व शिक्षा अभियान सामुदायिक स्वामित्व और एक विकेंद्रीकृत प्रबंधन के माध्यम से भारत में 2001 में शुरू किया गया एक प्रमुख कार्यक्रम है जिसके अन्तर्गत पंचायती राज संस्थाओं, स्कूल प्रबंधन समितियों, गांव स्तर की शिक्षा समितियों, माता-पिता, शिक्षक संघों और अन्य ऐसे जमीनी स्तर के संस्थानों को शामिल किया गया है जो शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करने के लिए छात्र-शिक्षक अनुपात, शिक्षकों के प्रशिक्षण, अकादमिक सहायता आदि कारकों पर जोर देती है ताकि प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हो सके। बालिका शिक्षा व अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा को ध्यान में रखते हुए विभिन्न योजनाओं का क्रियान्वयन किया जा रहा है, विशेषतया बालिकाओं के लिए कई कार्यक्रम

चलाये जा रहे हैं। कस्तूरबा गांधी शिक्षा योजना, राष्ट्रीय बाल भवन जैसी संस्थाएं बच्चों को अपनी पसंद के अनुसार गतिविधियों का परिशीलन करने व सर्व शिक्षा अभियान तथा मध्याह्न भोजन योजना जैसे अन्य कार्यक्रम शुरू किए गए हैं ताकि अधिकाधिक बच्चों (व माता–पिता) को साक्षरता की ओर आकृष्ट कर सकें व शिक्षा में लैंगिक असमानता को दूर किया जा सके।

प्रारंभिक शिक्षा विभाग, भारत सरकार को प्रारम्भिक शिक्षा से संबंधित नीतियों और कार्यक्रमों पर परामर्श देने हेतु एन.सी.ई.आर.टी. का एक नोडल विभाग है। सर्व शिक्षा अभियान और बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के कार्यान्वयन हेतु यह राष्ट्रीय स्तर पर एक नोडल केन्द्र के रूप में कार्य करता है। इस विभाग के प्रमुख क्षेत्र हैं– प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा, प्रारंभिक साक्षरता कार्यक्रम और प्रारंभिक शिक्षा। भारतीय संविधान की धारा 45 के अनुसार 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा देने हेतु राजस्थान में शिक्षा के विकास तथा प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की दिशा में पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से निरंतर प्रयास किए जा रहे हैं (शर्मा, ऋचा 2011)। लेकिन खेद का विषय है कि राजस्थान में ही नहीं बल्कि पूरे देश में शिक्षा में लैंगिक असमानता को उस हद तक दूर नहीं किया जा सका है।

निष्कर्ष

राजस्थान में बालिका शिक्षा की गुणवत्ता और सरकारी स्कूलों में बुनियादी ढांचे में सुधार करने के लिए गांव व समुदायों को सशक्त बना करके ज्यादातार लड़कियों को एक बड़े पैमाने पर शिक्षित किया जा सकता है। क्योंकि शिक्षा ही एक ऐसा प्रभावशाली माध्यम है जिसके द्वारा समाज में व्याप्त लैंगिक असमानताओं को दूर किया जा सकता है। प्रयुक्त अध्ययन के अनुसार यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि केवल कानून बना देने या विद्यालयों की संख्या बढ़ा देने से ही राजस्थान में प्रारंभिक शिक्षा में सुधार नहीं हो सकता, इसके लिए योग्य शिक्षकों की आपूर्ति विद्यालयों में सुनिश्चित करना, शिक्षकों और विद्यार्थियों के मानक अनुपात को कठोरता से अनुपालित करना तथा विद्यालयों में मुलभूत सुविधाओं मसलन पेयजल, शौचालय, बैठने आदि की व्यवस्था को सुनिश्चित करना अति आवश्यक है, तथा शैक्षिक योजनाओं के सही तरह से क्रियान्वयन पर भी ध्यान देना होगा तभी प्रारंभिक शिक्षा एवं शिक्षा के सभी स्तरों में व्याप्त लैंगिक असमानता को दूर किया जा सकता है और अनिवार्य तथा प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य को सार्थक किया जा सकता है।

संदर्भ

आचार्य, रामविलास (2012). *शिक्षा और समाज,* दिल्ली : ग्लौरियस पब्लिशिंग हाउस.

बत्रा, उर्मिला (2012). *महिला साक्षरता एवं सामाजिक परिवर्तन,* जयपुर : मार्क पब्लिशर्स.

पाठक, पी. डी. (2012). *शिक्षा मनोविज्ञान,* आगरा : श्री विनोद पुस्तक मंदिर.

शर्मा, ऋचा (2011). *भारत में सामाजिक समस्याएँ,* जयपुर : सागर पब्लिशर्स.

छापडिया, मनोज (2008). *स्त्री शिक्षा और सामाजिक गतिशीलता,* नई दिल्ली : सीरीयल्स पब्लिकेशन्स.

आर्य, अल्का और पांडेय, प्रेमा (2005). *शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं के प्रशिक्षकों हेतु जेन्डर सुग्राह्यता प्रशिक्षण कार्यकर्म,* नई दिल्ली.

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005). *राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद.* नई दिल्ली

http://epaper.patrika.com/295894/Patrika-Gwalior/29-06-2014

http://rajshiksha.gov.in 07/06/2014

http://www.pratham.org/ 17/06/2014

http://censusindia.gov.in/2011–prov results/prov_data_products_rajasthan.html 18/04/2014

http://mhrd.gov.in/hi/schemes 08/03/2014

http://mhrd.gov.in/hi/elementaryeducation1 08/03/2014

http://mhrd.gov.in/hi/retH 08/03/2014

www.census2011.co.in/census/state/rajasthan.html 09/03/2014

http://mhrd.gov.in/rte 15/03/2014

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 3, दिसंबर 2013

विद्यालय में लड़कियों का सामाजीकरण और लैंगिक समता के अवसर

मनोज कुमार चाहिल*

परिचय

सामाजीकरण व्यक्तित्व निर्माण में अहम् भूमिका निभाता है। अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'शिक्षा और लोकतंत्र' में जॉन डिवी (1998) कहते हैं कि यदि हमें बच्चों की शिक्षा को सबोध रूप से नियंत्रित करना है तो उसका एक ही तरीका हो सकता है कि उनके उस पर्यावरण को नियंत्रित किया जाए जिसमें वे क्रियाशील होते हैं और जिसके कारण सोचते और अनुभव करते हैं। कानून के समक्ष सभी बराबर हैं तथा किसी भी सामाजिक वर्ग पर भेदभावपूर्ण निषेधाज्ञा नहीं है। परन्तु सामाजीकरण कानून की इन सभी अवधारणाओं को एक सिरे से खारिज कर देता है और इसके फलस्वरूप विभिन्न वर्गों व श्रेणियों के लोग अपनी विशिष्ट पहचान, व्यक्तित्व, आकांक्षाएं आदि प्राप्त करते हैं। क्या वर्जित है और क्या अवर्जित यह एक ओर तो कानून बताता है, दूसरी ओर समाज। परन्तु जो लक्ष्मणरेखा सबसे गहरी पैठती है वह सामाजीकरण द्वारा निर्धारित हमारा मानस है, जिसमें, अनेक बार, वैकल्पिक संभावनाओं की कल्पना करना भी कठिन हो जाता है। विद्यालय में सामाजीकरण को समझना इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि विद्यालय को सामाजीकरण के एक प्रमुख एजेन्ट के रूप में देखा जाता है।

आमतौर पर स्कूल और समाज के संबंध को एकतरफा रूप से देखा जाता है। यह अपेक्षा की जाती है कि शिक्षा के माध्यम से सभी प्रकार के परिवर्तन हो जाएं। लेकिन शिक्षा, समाज से अलग-थलग चलने वाली प्रक्रिया नहीं है। समाज में पूर्व-स्थापित मूल्य चेतना और वांछनीय मूल्य चेतना के बीच की खाई बच्चे के सीखने में भी द्वन्द्व उत्पन्न करती है। शिक्षा समाज की उप-व्यवस्था है जो कि समाज में उपस्थित मूल्य चेतना से अप्रभावित नहीं रह सकती। इसका आशय यह भी नहीं है कि शिक्षा की यह प्रक्रिया द्वन्द्व रहित हो

*शोध-छात्र, केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय। ई-मेल: mkchahil@gmail.com

जाएगी। बेहतर स्थितियों की प्राप्ति के लिए द्वन्द्व तो रहेगा ही लेकिन बेहतर स्थितियों की प्राप्ति में समाज का योगदान भी महत्त्वपूर्ण होता है। सामाजीकरण की प्रक्रिया में बच्चा सोचने-समझने के तौर तरीके, मूल्य चेतना और यहां तक की महसूस करने की क्षमता भी समाज से ही प्राप्त करता है।

एक तरफ तो विद्यालय एक आधुनिक संस्था है जिससे यह उम्मीद की जाती है कि वह अपने छात्रों को न्यायसंगत एवं वृहतर विकल्प प्रदान करेगा। दूसरी ओर उसके सदस्य, जो इसी समाज की उपज हैं, अपनी पूर्वाग्रहयुक्त मान्यताओं एवं मूल्यों का असर अवश्य डालते हैं। ये मान्यताएं व मूल्य लड़कियों एवं लड़कों के लिए भिन्न प्रकार के होते हैं; यहां तक कि ये परस्पर विपरीत भी होते हैं। भले ही इस प्रकार के सामाजीकरण का खामियाजा सभी को किसी न किसी रूप में भुगतना पड़ता है परन्तु लड़कियों के लिए इसका असर अधिक प्रतिगामी दिखाई पड़ता है। और सामाजीकरण की खूबी ही यही है कि बहुदा उन्हें इसका अहसास भी नहीं होता है!

इस आलेख में सामाजीकरण की अवधारणा को विद्यालय के संदर्भ में देखने का प्रयास किया गया है और विद्यालय में भी लड़कियों के सामाजीकरण को केन्द्र में रखा गया है। स्कूलों में लैंगिक सामाजीकरण को समझने के लिए दिल्ली नगर निगम में पढ़ाने वाले कुछ शिक्षकों के साथ बातचीत की गई तथा कुछ विद्यालयी अवलोकन किए गए। (ध्यातव्य है कि ये शिक्षक कक्षा 1 से 5 तक के सह-शिक्षा विद्यालयों में अध्यापन कार्य कर रहे हैं।) आलेख में आगे बातचीत के अंश एवं कुछ उदाहरणों का इस्तेमाल किया गया है।

सामाजीकरण की प्रक्रिया

शिक्षा पर बच्चों के सामाजीकरण का इतना गहरा और व्यापक दबाव रहा है कि शिक्षा को सामाजीकरण के जरिये से अलग समझने में अक्सर समाज वैज्ञानिकों को दिक्कत होती है। लेकिन वास्तव में सामाजीकरण वह सहज प्रक्रिया है जो इंसान के इस दुनिया में कदम रखने के बाद ही शुरु हो जाती है। बच्चा समाज में रहते हुए समाज के नियम-कायदों, विश्वासों, आस्थाओं, आचार-व्यवहारों और मूल्यों आदि को सीखता और आत्मसात् करता है– यही सामाजीकरण है। बर्जर एवं लकमैन (1991) के अनुसार सामाजीकरण दो प्रकार का होता है– प्राथमिक सामाजीकरण एवं द्वितीयक समाजीकरण। एक बच्चे के जन्म के बाद उसके पारिवारिक सदस्य (माता-पिता, भाई-बहन, दादा-दादी इत्यादि) उसके लिए 'सार्थक अन्य' (significant others) की भूमिका निभाते हैं। बच्चे के

सामाजीकरण का दायित्व 'सार्थक अन्य' के ऊपर होता है। बच्चा नियम-कायदों, विश्वासों, आस्थाओं, आचार-व्यवहारों और मूल्यों आदि को 'सार्थक अन्य' से सीखता और आत्मसात् करता है जिससे उसकी एक पहचान का निर्माण होता है। इसके अतिरिक्त 'सामान्यीकृत अन्य' (Generalized others) (जिसमें समाज के अन्य लोग- जैसे, पड़ोसी आदि शामिल हैं) भी बच्चे के सामाजीकरण में अपनी भूमिका निभाते हैं। यही प्राथमिक सामाजीकरण की प्रक्रिया है। बर्जर एवं लकमैन के अनुसार सामाजीकरण की प्रक्रिया में बच्चा इतने सहज रूप से निष्क्रिय नहीं होता, लेकिन खेल के सारे नियम वयस्क ही तय करते हैं। द्वितीयक सामाजीकरण संस्थागत भूमिकाओं को आत्मसात् करने की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत मनुष्य समाज में अपेक्षित भूमिकाओं को निभाने के लिए आवश्यक कौशलों को सीखता है। इस कथन को हम दुर्खीम के 'डीवीजन ऑफ लेबर' की संकल्पना के आलोक में देख सकते हैं। दुर्खीम (2008)[1] के अनुसार सामाजीकरण वह प्रक्रिया है जिससे उसके सदस्य उन सारी अवधारणाओं, विश्वासों एवं नियमों का निर्माण करते हैं जिससे वह समाज सुचारू रूप से कार्य कर सके।

विद्यालय में सामाजीकरण

दुर्खीम के अनुसार कई समाज काफी जटिल हैं और वे टिके रहेंगे, लेकिन अगर वे वाकई टिके रहना चाहते हैं तो शिक्षा इसमें एक भूमिका निभा सकती है। कम-से-कम स्कूल लोगों का सामाजीकरण करने का काम तो कर ही सकते हैं। यहां उनका आशय यह नहीं है कि शिक्षा हर समाज में वास्तव में यही काम करती है और केवल यही काम वह कर सकती है अपितु उनका मानना है कि अगर समाज को टिके रहना है तो शिक्षा को ये काम करना ही चाहिए। यहां दुर्खीम समाज की चली आ रही व्यवस्था को बनाये रखने के लिए शिक्षा का होना निहायत ही जरूरी मानते हैं; बल्कि उनका तो मानना है कि शिक्षा का काम ही इसे बनाए रखना है जो वह एक पीढ़ी के मूल्यों, विश्वासों तथा आस्थाओं को दूसरी में संचारित करके करती है।

यदि समाज में कदम रखने वाले प्रत्येक प्राणी का सामाजीकरण नहीं होगा तो इस दुनिया में रहना उसके लिए मुश्किल हो जायेगा। सामाजीकरण 'जो है' उसे जानने-समझने और ग्रहण करने का मामला है। यह प्रक्रिया इंसान में जन्म के साथ ही अचेतन रूप से प्रारम्भ हो चुकी होती है। 'जो है' उसे जानने-समझने और ग्रहण करने में भला किसी को क्या दिक्कत हो सकती है! परन्तु सामाजीकरण सिर्फ यहीं तक सीमित नहीं है वरन् इसमें यह अवधारणा निहित है कि 'जो है' वही अंतिम सत्य और वांछनीय है और उसे ही बनाए रखना चाहिए। साथ ही जिन मान्यताओं, विश्वासों, नियम-कायदों और मूल्यों

आदि को ग्रहण करने की बात की जाती है, उन्हें ऐसे देखा, समझा जाता है जैसे कि वे मानव समाज के उद्भव से ही अनवरत अपरिवर्तनशील रूप से चले आ रहे हैं। लेकिन शिक्षा अपनी प्रकृति से ही एक सचेतन प्रक्रिया है जो कि प्रश्न-प्रतिप्रश्न पर टिकी रहती है और इसीलिए यह सामाजीकरण से भिन्न है। प्रश्न-प्रतिप्रश्न आलोचनात्मक चिंतन को जन्म देते हैं। और आलोचनात्मक चिंतन कभी भी यथास्थिति को स्वीकार करके नहीं चलता। विद्यालयी कक्षा के बारे में बात करते हुए टॉलकॉट पार्सन्स (2010) कहते हैं:

> *भविष्य में निर्धारित भूमिकाओं के लिए आवश्यक प्रतिबद्धता और क्षमता का विकास व्यक्तियों में करना सामाजीकरण का मुख्य प्रकार्य है। प्रतिबद्धताओं को प्रमुख अंगों में बांटा जा सकता है। समाज के व्यापक 'मूल्यों' को क्रियान्वित करने की प्रतिबद्धता और समाज की संरचना में विशिष्ट प्रकार की भूमिकाओं के लिए प्रतिबद्धता... जहां, एक तरफ, विद्यालयी कक्षाएं प्रतिबद्धताओं और क्षमताओं के विविध अंगों को विकसित करने वाली प्रमुख एजेंसी हैं वहीं, दूसरी तरफ, समाज के परिप्रेक्ष्य से यह 'मानवशक्ति' का वितरण करने वाली एजेंसी है।* (पृष्ठ, 76)

शिक्षा और सामाजीकरण के बीच एक अन्तर्संबंध को देखा जा सकता है परन्तु सामाजीकरण की संकल्पना और शिक्षा की संकल्पना हमेशा आपस में मेल नहीं खाती। शिक्षा के द्वारा 'जो है' उसे जानने व समझने की बात तो सदैव की जाती है (जैसे कि सामाजीकरण में की जाती है) लेकिन जो है उसी से संतुष्ट हो जाना शिक्षा का काम नहीं है। इसी प्रकार समाज की विकासमान अवधारणा भी सामाजीकरण से भिन्न दृष्टिकोण रखती है। सामाजीकरण से ऐसा प्रतीत होता है जैसे समाज किसी स्थिर अवस्था में रहता है, लेकिन मानव समाज की अभी तक के इतिहास को देखने पर ऐसा प्रतीत नहीं होता। यहीं प्रश्न उठता है कि यदि शिक्षा का काम सामाजीकरण करना है तो फिर 'सामाजिक परिवर्तन' का कार्य किसका है?

शिक्षा और सामाजीकरण में एक घनिष्ठ संबंध है। शिक्षा को समाज से अलग करके नहीं देखा जा सकता। शिक्षा पर समाज के प्रभुत्वशाली वर्ग का वर्चस्व रहता है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य द्वितीयक सामाजीकरण करना है और यह उद्देश्य तब-तक पूरा नहीं हो सकता जब तक एक विद्यार्थी को उसके सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में रखकर न देखा जाए। एक विद्यार्थी अपने साथ कक्षा में विश्वास, संस्कृति, विचार, मूल्य आदि लेकर प्रवेश करता है। स्कूल का कार्य उस विद्यार्थी के साथ काम करना होता है जिसका व्यक्तित्व काफी हद तक पहले ही बन चुका होता है। स्कूल के सामने

सबसे बड़ी चुनौती यह होती है कि बच्चा अपने समाजीकृत अन्तस को विवेकशील एवं सशक्त रूप से बढ़ा सके।

लड़कियों का सामाजीकरण तथा विद्यालयी अवयव

सामाजीकरण की उपर्युक्त समझ के पश्चात् अब हम इस बात को जानने का प्रयास करेंगे कि लड़कियों के संदर्भ में द्वितीयक सामाजीकरण अपनी भूमिका किस प्रकार निभाता है। पाठ्यचर्या, प्रछन्न-पाठ्यचर्या तथा शिक्षकों के दृष्टिकोण सामाजीकरण की इस प्रक्रिया में किस प्रकार अपनी भूमिका निभाते हैं।

समाज के दलित-वंचित एवं अल्पसंख्यक समुदाय के साथ पाठ्यचर्या के बर्ताव पर टिप्पणी करते हुए यंग, बर्न्सटीन एवं कैडी ने अपने शोध के आधार पर यह प्रतिपादित किया कि पाठ्यचर्या समाज के दबंग तबकों को वह जरिया मुहैय्या करवाती है जिसके सहारे वह अधीनस्थ समूह पर नियंत्रण कायम करते हुए अपनी बढ़त वाली स्थिति को बरकरार रखते हैं (ब्लेनकीन तथा अन्य, 1992)। आज दुनियाभर में इस विचार को तेजी से मान्यता मिल रही है कि जिस प्रकार राजनीति वर्गीय होती है उसी प्रकार शिक्षा भी वर्गीय होती है। इवान इलिच, पाउलो फ्रेरे, मार्टिन कारनॉय, माइकल एप्पल एवं हैनरी गीरू आदि विद्वानों के शैक्षिक विमर्श में इसे साफ तौर पर देखा जा सकता है। इन्होंने अपने विमर्शों में वर्तमान शिक्षा पद्धति पर टिप्पणी करते हुए इसे कुल मिलाकर नकारात्मक प्रभाव वाली, मौन की संस्कृति रचने वाली (फ्रेरे, 1996) तथा थोड़े से लोगों को बहुतों के जीवन पर नियंत्रण कायम करने में सहायता पहुंचाने वाली माना है (कॉरनाय, 1997)। एफ. डी. यंग का मानना है कि समाज का शक्तिशाली वर्ग ही यह तय करता है कि किसे ज्ञान के रूप में लिया जाए (एप्पल, 1990)। एप्पल का कहना है कि यही तबका किसी समूह से संबंधित ज्ञान को सबसे ज्यादा वैध और कार्यालयी ज्ञान के रूप में मान्यता देता है एवं स्थापित करता है जबकि दूसरे तबके से संबंधित ज्ञान शायद ही प्रकाश में आता है (एप्पल, 1993)।

इस संदर्भ में कृष्ण कुमार (1998) लिखते हैं:

> समाज में जिन तबकों का वर्चस्व है वे शिक्षा, और विशेषकर पाठ्यक्रम, का इस्तेमाल यह सुनिश्चित करने में कर सकते हैं कि उनकी आवाजों के अलावा और सभी आवाजें इतनी नाकाफी, कमजोर या बिगड़े रूप में आएँ कि उनकी अपील नकारात्मक हो जाये और पाठ्यक्रम के विमर्श में उनके लिए जगह ही न रह जाए। (पृ. 22)

शिक्षा को एक निरपेक्ष साधन नहीं माना जा सकता क्योंकि विद्यालय में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति अपने साथ कुछ विश्वास, मूल्यों, संस्कृति आदि को लेकर प्रवेश करता है और शिक्षक भी इसका अपवाद नहीं है। इसी प्रकार पाठ्यचर्या को भी निरपेक्ष रूप में नहीं देखा जा सकता। इस संदर्भ में मालिनी घोष (2002) का यह वक्तव्य तर्कसंगत प्रतीत होता है कि पाठ्यचर्या जिसमें विषयवस्तु, भाषा, पाठ्यपुस्तक में दर्शाए गए चित्र शामिल हैं और इसी प्रकार अध्यापकों की समझ एवं दृष्टिकोण वह ताकत है जो पितृसत्तात्मक संरचना को और अधिक मजबूत करती है। एक शैक्षिक कार्यक्षेत्र 'घरेलू कार्यक्षेत्र' की तरह एक सीमित (बंद) कार्यक्षेत्र बन जाता है जहाँ भेदभाव सामान्य एवं शांत (silenced) है।'

इस संदर्भ में शिक्षकों के साथ हुए वार्तालाप से कई बातें सामने निकलकर आईं। वार्तालाप के दौरान कुछ ऐसे मुद्दे निकलकर आए जो विमर्श में देखने को नहीं मिलते हैं। उदाहरण के तौर पर एक शिक्षक के अनुसार ''किसी चीज का नहीं होना भी एक बड़ा संदेश देना है। सामान्यत: स्कूलों में मनाए जाने वाले उत्सवों/जयंतियों में किसी महिला पात्र की अनुपस्थिति को देखा जा सकता है।'' शिक्षक की उक्त बात सच है कि विद्यालय में कई प्रकार के उत्सव मनाए जाते हैं जो किसी न किसी पुरुष से ही संबंधित होते हैं। सिवाय 'सरस्वती पूजा' के ऐसा कोई भी उत्सव नहीं मिलता जो किसी स्त्री रूप से संबंधित हो। और सरस्वती पूजा का भी आयोजन स्त्री विमर्श की दृष्टि से इसलिए महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि यह मिथक के रूप में अधिक और इतिहासबोध के रूप में कम जाना जाता है।

संबोधन को भी शिक्षकों ने लैंगिक-पूर्वग्रह को पुख्ता करने का जरिया बताया। उनके अनुसार लड़कों एवं लड़कियों को भिन्न रूप से संबोधित किया जाता है। जैसे कि- लडकों को उनके नाम से या बेटा कहकर पुकारना, वहीं लड़कियों को बिटिया, गुड़िया आदि कहना जिसमें नाजुकता या कोमलता का भाव निहित है। एक अध्यापक के अनुसार ''स्वयं सरकार के द्वारा स्वीकृत या चलाई जा रही योजनाओं में इन नामों (लाडली, नन्हीं कली, लक्ष्मी आदि) को रखा गया है। हालांकि ये योजनाएं लड़कियों की शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए बनाई गई हैं परन्तु उनमें इस्तेमाल की गई शब्दावली उनकी राजनीति को कुन्द कर देती है।'' (या उनकी राजनीति को असल में व्यक्त व उजागर करती है!)

आधुनिक समाज में सैद्धान्तिक रूप से महिलाओं की स्थिति और सहभागिता पुरुष के समान है। यह बात आधुनिक कथानकों के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास भी किया

जाता है। लेकिन अक्सर इसके लिए बहुत सजगता की जरूरत है। कृष्ण कुमार (1989) के शब्दों में ही कहें तो– 'लिंग आधारित पूर्वग्रह वास्तव में अवचेतन में इतनी गहराई तक चला गया है कि परम्परागत विषयवस्तु विश्लेषण उसे बाहर निकालकर प्रदर्शित नहीं कर सकता।'

स्कूलों में बच्चों के ठहराव की समस्याओं को अक्सर स्कूल के बाहर स्थित कारणों में खोजने का चलन रहा है। यही वजह है कि इस विषय पर आयोजित तमाम अध्ययन उन आर्थिक-सामाजिक कारणों को ही केन्द्र में रखते हैं जिनसे वास्तविकता का आंशिक पक्ष तो उजागर होता है परन्तु परिघटना की पूरी तस्वीर सामने नहीं आती। बच्चों के ठहराव की समस्या भी मध्यमवर्गीय समस्या नहीं है। यह समस्या उन इलाकों, समूहों और वर्गों के बच्चों की ज्यादा है जिनकी पहली पीढ़ी स्कूली शिक्षा में दस्तक दे रही है और इनमें भी दूर-दराज के ग्रामीण इलाकों या अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के बच्चे एवं खासतौर से लड़कियों के संदर्भ में अधिक गंभीर है।

रोजमर्रा के विद्यालयी जीवन में औरतपन व मर्दपन को गढ़ने वाले व्यवहारों के प्रतिरूप लैंगिकता के छुपे हुए शिक्षाक्रम के लिए पृष्ठभूमि का काम करते हैं। ये प्रतिरूप एक तरह के लैंगिक 'नियम-कायदे' गढ़ते हैं (मैक्डोनाल्ड, 1980)। ये लैंगिक कायदे किसी खास विद्यालय के अंदर सभी सामाजिक अभिनेताओं के लिए 'लैंगिक तौर पर वाजिब' व्यवहार के संकेतों को मुहैया करवाते हैं। विद्यालयी बच्चों के लिए, लैंगिक नियम-कायदों के 'सुरागों को तलाशने' में विद्यालय के अंदर सामाजिक मेलजोल के संदर्भों में लैंगिकता को देख-सुन कर समझना शामिल होता है। बच्चा अपनी लैंगिक पहचान को संस्थागत तौर पर विद्यालय की 'छोटी-सी दुनिया' में 'लैंगिक चश्मे' की मदद से देखता है जो कि रोज-ब-रोज के विद्यालयी जीवन में आमतौर पर होने वाले व्यवहारों, रोजमर्रा के कामकाजों व रिवाजों से बनता है। लैंगिक सामाजीकरण बेखबर विषयों पर लैंगिक नियम कायदों को 'कबूल कर लेने' से ही नहीं, बल्कि विद्यालय के लैंगिक नियम कायदों में बच्चों की सक्रिय भागीदारी के जरिए भी होता है।

विद्यालय में लैंगिक सामाजीकरण यह तय करता है कि लड़कियों को इस बारे में बताया जाए कि वे लड़कों से असमान या भिन्न हैं। हर समय विद्यार्थी सामाजिक-लिंग के आधार पर बैठते या पंक्तियों में खड़े होते हैं और शिक्षक इस बात की पुष्टि करते हैं कि लड़कों एवं लड़कियों के साथ भिन्न रूप से बर्ताव किया जाना चाहिए। एक शिक्षक ने यह रोचक जानकारी दी कि उनके तथाकथित सह-शिक्षा विद्यालय में लड़कों एवं लड़कियों के अलग-अलग अनुभाग बनाए गए थे। दिल्ली के सरकारी विद्यालयों का दो

पालियों में होना भी इसी 'लैंगिक अलगाववाद' का विस्तार व उदाहरण है। यहां पर सरकार की तरफ से भी समाज के इस संदेश को पुख्ता किया जा रहा है कि एक निश्चित समय ही लड़कियों के घर से बाहर रहने के लिए उपयुक्त है।

वार्तालाप में सजा का प्रारूप भी एक मुद्दा उभरकर आया जो लैंगिक विभेद को जन्म देता है। हालांकि शारीरिक दंड को कानूनी रूप से प्रतिबंधित कर दिया गया है फिर भी आमतौर पर इसका उपयोग विद्यालयों में कुछ स्तर पर अभी भी किया जाता है। एक शिक्षक के अनुसार लड़कियों एवं लड़कों को दी जाने वाली सजा के प्रारूप में भी भिन्नता देखने को मिलती है। उनके अनुसार लड़कियों को कुछ प्रकार के व्यवहारों से इसलिए दूर रखा जाता है क्योंकि उन्हें नाजुक व कमजोर समझा जाता है। (इससे मुझे अपना बचपन का स्कूल याद आता है जहां लड़कों को अध्यापक द्वारा दण्ड के रूप में 'मुर्गा' बना दिया जाता था वहीं लड़कियों को खड़े होने या ज्यादा से ज्यादा कुछ समय के लिए 'हाथ खड़े' करने की सजा मिलती थी।)

भूमिका निर्वाह को भी लैंगिक-रूढ़िबद्धता के साथ देखा जा सकता है। बातचीत में यह बात सामने आई कि किसी खास कार्य के लिए लड़कों को ही और अन्य के लिए लड़कियों को बुलाया जाता है। उदाहरण के लिए अगर गमला या कोई अन्य भारी सामान उठाना है तो लड़कों को बुलाया जाता है, वहीं अगर कार्य स्वच्छता का हो, रंगोली बनाना हो, कक्षा को सजाना हो, सांस्कृतिक कार्यक्रम हो, स्वागतगान हो तो लड़कियों को इसका जिम्मा सौंपा जाता है। किसी सांस्कृतिक कार्यक्रम के उपलक्ष में स्वागत करने वाली लड़कियां भी कौन व कैसी होंगी इसका पैमाना भी उस लैंगिक-रूढ़िबद्धता को दर्शाता है जिसमें लड़कियों को 'सुन्दरता' के संकुचित मापदण्डों पर खरा उतरना होता है। ऐसे कार्यक्रमों में लड़कियों को एक वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया जाता है न कि उनके कार्य को और स्वयं उन पर भी यह दबाव रहता है कि वे इस छवि में ढलें या इसके मापदण्डों का वर्चस्व स्वीकार करें। एक शिक्षक के अनुसार ''हमारे विद्यालय में सांस्कृतिक कार्यक्रमों के लिए छात्राओं को चुनने का कार्य एक महिला शिक्षक करती हैं और इससे यही साबित होता है कि स्वयं महिलाएं भी अपना आकलन पुरुषों की दृष्टि से करती हैं।''

कई शिक्षक खेल के मैदान को एक ऐसा स्थल मानते हैं जो प्राथमिक सामाजीकरण के मूल्यों एवं मान्यताओं को और अधिक पुख्ता करता है। यह देखने में आया है कि खेल के मैदान पर अक्सर लड़कों का कब्जा रहता है जिसे प्राकृतिक तथ्य के रूप में मान्यता मिली हुई है। इस बात की चेष्टा नहीं की जाती कि कम से कम विद्यालय में तो लड़के एवं लड़कियों दोनों को खेलने के समान अवसर मिले। बल्कि विद्यालय

प्रांगण में भी खेलों का लैंगिक आधार पर वर्गीकरण किया जाता है। इसका उदाहरण इस रूप में देखा जा सकता है कि किसको कौन-कौन से खेल खेलने को प्रोत्साहित किया जाता है। यह देखने में आता है कि खुले मैदान में खेले जाने वाले खेल खेलने का अवसर लड़कियों को नहीं दिया जाता है वरन् उनसे उम्मीद की जाती है कि वो 'लड़कियों वाले खेल' खेलें।

अक्सर शिक्षकों का आपसी व्यवहार भी लैंगिक-पूर्वग्रह को पुख्ता करता है। शिक्षक विद्यालय में कौन-कौन से प्रशासनिक दायित्व निभाते हैं। उदाहरण के तौर पर, कौन बाहर का कार्य करेगा? अनुशासन की जिम्मेदारी किसकी होगी? सांस्कृतिक कार्यक्रमों का संचालन कौन करेगा? विज्ञान-मेला या विद्यालय के किसी उत्सव में 'खाने-पीने' का स्टॉल कौन लगाएगा? कार्य का बंटवारा विद्यार्थियों में कहीं न कहीं यह संदेश देता है कि कार्य विभाजन एवं भूमिका निर्वाह का एक निर्णायक आधार लैंगिक असमानता है। यहां पर विद्यालय अवलोकन की एक परिघटना की चर्चा करना रोचक होगा। ऐसी स्थितियों में भी जहां महिला शिक्षक पुरुष शिक्षकों की तुलना में औसतन अधिक आर्थिक रूप से सम्पन्न पृष्ठभूमि से हैं वहां यह तथ्य रोचक था कि जहां एक तरफ अधिकतर पुरुष विद्यालय आवागमन के लिए अपने निजी वाहन का उपयोग करते हैं वहीं दूसरी ओर ऐसा करने वाली महिलाओं की संख्या न के बराबर है। (कुछ महिला शिक्षक जो निजी वाहन का इस्तेमाल करती भी हैं वो ऐसा यात्री की भूमिका में कर पाती हैं न कि चालक की भूमिका में!)

बातचीत के आधार पर मोटे तौर पर विद्यालयों में लड़कियों के सामाजीकरण को निम्नलिखित संकेतकों के माध्यम से देखा जा सकता है– वर्ग विशेष की उपस्थिति-अनुपस्थिति; शिक्षकों का व्यक्तिगत संबोधन-व्यवहार; नीतियों में व्यक्त रुढ़िबद्धता; विद्यालयी जीवन में सांस्कृतिक मंच व खेल के मैदान के अवसर; विद्यार्थियों में रुढ़िबद्ध भूमिका निर्वाह को प्रोत्साहन; शिक्षकों की आपसी भूमिका व परस्पर व्यवहार; लैंगिक अलगाव; यौन-हिंसा; आदि।

उपसंहार

इस बात के भी प्रमाण देखे जा सकते हैं कि लड़कों के बजाय लड़कियां अकादमिक रूप से सफल रहती हैं। पिछले कई वर्षों की बोर्ड परीक्षाओं के परिणामों से यह प्रतीत हो सकता है कि स्कूलों में लड़कों एवं लड़कियों का सामाजीकरण लैंगिक समानता के आधार पर हो रहा है। पर इस तथ्य को लैंगिक समानता के लिए संतोषजनक मान लेना

भ्रम में रहना मात्र होगा वरन् यहां यह देखना आवश्यक है कि उच्च परिणाम प्राप्त करने के पश्चात् भी लड़कियों के व्यक्तित्व का निर्माण किस प्रकार हो रहा है।

लैंगिक विभेद अस्पष्ट रूप से कक्षा के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले साधनों के चुनाव के द्वारा भी पढ़ाया जाता है। महिलाओं के योगदान को छोड़ने वाले पाठ का इस्तेमाल करना, महिलाओं के अनुभव को सांकेतिक रूप से ही इस्तेमाल करना और रूढ़िबद्ध लैंगिक भूमिका, ये सब लैंगिक भेदभाव को विद्यालय की पाठ्यचर्या में शामिल करते हैं। शोध यह दर्शाते हैं कि लैंगिक–न्यायसंगत साधन विद्यार्थियों में अधिक लैंगिक–संतुलन के ज्ञान को बढ़ाते हैं। लैंगिक भूमिका के प्रति दृष्टिकोण को पुनर्स्थापित करने के लिए और भूमिका–व्यवहार को अनुकरणीय बनाने के लिए विद्यालय लैंगिक–विभेदीय पाठ को जारी रखता है।

स्पष्टत: लैंगिक भूमिका का सामाजीकरण एवं लैंगिक–पूर्वाग्रहयुक्त प्रछन्न पाठ्यचर्या लड़कों एवं लड़कियों के लिए एक असमान शिक्षा को बढ़ाते हैं। सब बच्चों के लिए एक समान अधिगम का माहौल बनाने के लिए क्या परिवर्तन किए जाने चाहिए? पहला, शिक्षकों को लैंगिक–पूर्वग्रह की प्रवृति के प्रति सचेत किया जाना चाहिए। दूसरा, उन्हें इस व्यवहार को परिवर्तित करने के लिए सहायता (सामग्री, प्रशिक्षण आदि) प्रदान की जानी चाहिए। और इस बात के प्रयास किए जाने चाहिए कि शैक्षिक सामग्री लैंगिक पूर्वग्रह से मुक्त हो।

जहां पाठ्यपुस्तकें लैंगिक संवेदनशीलता का कुछ ध्यान रखती भी हों वहां विद्यालय एवं स्थानीय स्तर पर होने वाले मूल्यांकन यह तय कर देते हैं कि इनका प्रभाव न्यूनतम रहेगा क्योंकि इनका परीक्षाओं के साथ कोई संबंध नहीं बनाया जाता है।

उदाहरण के तौर, दिल्ली नगर निगम (अब उत्तरी दिल्ली नगर निगम) के पांचवी कक्षा के पर्यावरण अध्ययन (सत्र 2011–12) के प्रश्नपत्र में ऐसा एक भी प्रश्न नहीं था जो विद्यार्थियों की लैंगिक संवेदनशीलता को जांचता हो जबकि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के अनुसार बनाई गई राष्ट्रीय शिक्षा एवं अनुसंधान परिषद् की इस विषय की पुस्तक में कई पाठ इस विषय को संबोधित करते हैं। इससे यह निष्कर्ष भी निकाला जा सकता है कि सामान्यत: नीति एवं शिक्षकों के मध्य भी एक ऐसी कड़ी है जिसे समाजशास्त्रीय शोधों में नजरअंदाज कर दिया जाता है! वह कड़ी है शिक्षा विभाग के स्कूल निरीक्षकों से लेकर निदेशक स्तर तक के अधिकारियों की ।

यह बात सच है कि कई बार विद्यालय प्राथमिक सामाजीकरण को पुख्ता करते हैं पर वहीं इस संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता कि विद्यालय इनको चुनौती

भी देता है। विद्यालय चुनौती भी देता है और कई बार इसमें सफल भी होता है। और इस प्रकार इन दोनों के बीच द्वन्द्वात्मक संघर्ष चलता रहता है। (पर चुनौती या तो जबरदस्त सचेत संघर्ष का या ऐतिहासिक नीति का ही फल होती है- यह स्वतः घटने वाली प्रक्रिया नहीं है।)

लिंग-भेद के आधार पर समानता के अवसर सुलभ हों, इसके लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में शैक्षिक अवसरों की समानता और महिलाओं की शिक्षा पर जोर दिया गया है। इसके परिणामस्वरूप पाठ्यचर्यागत कार्यनीतियों में परिवर्तन लाने की कोशिश भी की गई है जो हमें राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के अन्तर्गत तैयार की गई पाठ्यपुस्तकों में देखने को मिलती है। परन्तु जैसा कि हम पहले भी जिक्र कर चुके हैं, यही पर्याप्त नहीं है। पाठ्यपुस्तकों को सिर्फ लैंगिक संवेदनशीलता दर्शाने वाली बना देने से काम खत्म नहीं हो जाता अपितु यह तो कार्य की शुरुआतभर है। अधिक से अधिक बालिकाओं के लिए शिक्षा सुलभ कराने के अतिरिक्त विद्यालयी पाठ्यचर्या, पाठ्यपुस्तकों और उन्हें पढ़ाने की प्रक्रिया में भी सभी प्रकार के लैंगिक भेदभाव और लैंगिक पूर्वाग्रहों को दूर करना अत्यावश्यक है। शिक्षकों से भी यह अपेक्षा की जानी चाहिए कि वे अपने सभी विद्यार्थियों की, चाहे वे लड़के हों या लड़कियाँ, श्रेष्ठतम विशेषताओं को पहचानें व मानें, साथ ही उन्हें समान रूप से पोषित करें। जरुरत इस बात की है कि लड़के व लड़कियों दोनों को ही ध्यान में रखकर ऐसी प्रभावशाली पाठ्यचर्या, कार्यनीति व सीखने-सिखाने के तरीके विकसित किये जाएं जो समान रूप से सक्षम, एक-दूसरे के प्रति संवेदनशील लड़के- लड़कियों की पीढ़ियों का निर्माण करें।

शिक्षकों की महत्वपूर्ण भूमिका को इंगित करते हुए यहां इटली के क्रांतिकारी लेखक एंटोनियो ग्राम्सी (1970) के विचार उल्लेखनीय हैं:

> ''स्कूल में, अध्यापन और शिक्षण के संबंध को शिक्षक अपने जीवंत कर्म के द्वारा ही साकार कर सकता है। इसके लिए उसे अपनी संस्कृति और समाज और अपने छात्रों की संस्कृति और समाज के बीच के अंतर के प्रति सचेत रहना होगा। उसे अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक होना पड़ेगा जिसका आशय बालक के निर्माण की गति को अपने आदर्शों के अनुकूल और छात्रों की समझ के प्रतिकूल तेज और विनियमित करना है। हो सकता है अध्यापक वर्ग पर्याप्त रूप से सक्षम नहीं हैं। ऐसे में अगर अध्यापन और शिक्षण के संबंध को खत्म कर अध्यापन की समस्या को बाजीगर का खेल मानकर शिक्षणीयता का यशोगान किया जाए और 'कार्डबोर्ड स्कीमें' लागू कर दी जाएं तो इसके फलस्वरूप अध्यापक के कार्य की गुणवत्ता

और भी कम हो जाएगी। हमें फिर शब्दजाली विद्यालय मिलेंगे। वहां गंभीरता का अभाव होगा क्योंकि वहां जो कुछ 'निश्चय ही' है, उसकी ठोस भौतिक बुनियाद गायब हो जाएगी। साथ ही जो कुछ 'सच' है, वह केवल शब्दाडंबर का सत्य होगा, विशुद्ध रूप से शब्दों का खेल (पृष्ठ 35–36)।

संदर्भ

एप्पल, माइकल(1990). *आइडियोलॉजी एण्ड करिकूलम*. न्यूयार्कः रटलेज।

एप्पल, माइकल(1993). *ऑफिसियल नॉलेजः डेमोक्रेटिक एडूकेशन इन कन्सर्वेटिव एज*. न्यूयार्कः रटलेज।

कारनॉय, मार्टिन. (1997). *सांस्कृतिक साम्राज्यवाद और शिक्षा*. नई दिल्लीः ग्रंथशिल्पी.

कुमार, कृष्ण ;1998द्ध *शैक्षिक ज्ञान और वर्चस्व*. दिल्लीः ग्रंथशिल्पी प्रकाशन.

ग्राम्सी, एंटोनियो (1971). *सेलेक्शन फ्रॉम प्रिजन नॉटबुक*, न्यूयॉर्कः इंटरनेशनल पब्लिशर्स.

जेंडर और शिक्षा रीडर– भाग 1 (2010). नई दिल्लीः निरंतर.

डीम, रोजमैरी (1978). *वूमेन एण्ड स्कूलिंग*. लंदनः रटलेज एण्ड कीगन पॉल।

डीवी, जॉन. (1998). *शिक्षा और लोकतंत्र*. नई दिल्लीः ग्रंथशिल्पी.

दुर्खीम, एमील. (2008). *शिक्षा का स्वरूप और उसकी भूमिका*. सुरेशचन्द्र शुक्ल एवं कृष्ण कुमार (सम्पादित) *शिक्षा का समाजशास्त्रीय संदर्भ* में (पृष्ठ 17–30). नई दिल्लीः ग्रंथशिल्पी.

दूबे, लीला (2001). *एन्थ्रोपोलोजीकल एक्सप्लोरेशन इन जैंडरः इण्टरसेक्टिंग फिल्डस्*. नई दिल्लीः सेज पब्लिकेशन।

पार्सन्स, टॉलकॉट. (2010). *सामाजिक व्यवस्था के रूप में स्कूली शिक्षाः अमेरिकी समाज में इसके कुछ प्रकार्य*. शिक्षा विमर्श, मार्च–जून (पृष्ठ 75–89). जयपुरः दिगन्तर.

फ्रेरे, पॉओलो. (1997). *उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र*, नई दिल्लीः ग्रंथशिल्पी

बर्जर, पी. एवं लकमैन, टी. (1991). *दि सोश्यल कन्सट्रक्शन ऑफ रियलटीः ए ट्रीटाइज इन दि सोश्योलॉजी ऑफ नॉलेज*. दिल्लीः पैंगुइन बुक्स.

ब्लेनकीन, जी.एम., एडवर्ड, जी. एवं केली, ए.वी. (1992). *चेंज एण्ड दि करिक्यूलम*. लंदनः पॉल चैपमैन पब्लिशिंग लिमिटेड.

भट्टाचारजी, नन्दिनी (2012). *आइने में अक्सः प्राथमिक विद्यालयों में लैंगिक (जैंडर) समाजीकरण*. शिक्षा विमर्श, मार्च–जून (पृष्ठ 21–32). जयपुरः दिगन्तर.

भारत सरकार (1986). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986।*

भोग, दिप्ता (2008). *जेंडर एण्ड करिक्यूलम*. ई. मैरी जॉन द्वारा संपादित वूमैंस स्टडीज इन इंडियाः ए रीडर में. पृष्ठ 352.360, नई दिल्लीः पैंगुइन बुक्स।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 3, दिसंबर 2013

बुनियादी शिक्षा की प्रासंगिकता

सुधाकर प्रसाद सिंह*

राष्ट्रीय मनवीय मूल्यों के विकास के महत्व के संदर्भ में ऐसे मूल्यों को प्राथमिकता मिलनी चाहिए जिसमें समाज और देश का कल्याण निहित हो। गांधी जी समाजोपयोगी मानव मूल्यों के महान समर्थक थे। उनका विश्वास था कि सच्ची शिक्षा के माध्यम से मनुष्य में मानवीय मूल्यों को विकसित किया जा सकता है। गांधी शिक्षा दर्शन का उद्देश्य मनुष्य का सर्वांगीण विकास है यथा–शरीरिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास। गांधीजी की दृष्टि में सच्ची शिक्षा वह है, जो मनुष्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक पक्षों के अभ्युदय में समान रूप से सहायक हो। दूसरे शब्दों में, आर्दश शिक्षा का अभिप्राय ऐसी शिक्षा से है जिसमें सर्वांगीण विकास की क्षमताएं निहित हो। इसी कसौटी के आधार पर गांधीजी ने औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली में सुधार की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट किया।

गांधी शिक्षा दर्शन की दूसरी प्रमुख विशेषता यह है कि रोजगार के अवसरों के विस्तार की प्रासंगिकता को ध्यान में रखकर गांधीजी ने स्वावलंबन और स्वरोजगार की क्षमता के विकास के लिए किसी प्रमुख दस्तकारी (craft) को शिक्षा प्रक्रिया का प्रमुख माध्यम बनाने का सुझाव दिया और उनके द्वारा प्रतिपादित बुनियादी शिक्षा प्रणाली में दस्तकारी शिक्षण सुविधा को प्रमुख स्थान दिया गया है। इस सुझाव का आशय यह था कि ऐसे प्रशिक्षण से कौशल विकास का अवसर मिलेगा तथा कार्य अनुभव प्राप्त होगा। इतना ही नहीं छात्रों का संबंध उत्पादन प्रक्रिया तथा उत्पादकता से जुड़ जाएगा। उल्लेखनीय है कि वैश्वीकरण एवं उदारीकरण के दौर में बौद्धिक पूंजी का महत्व बढ़ता जा रहा है। ज्ञानवान कर्मी की मांग तेजी से बढ़ती जा रही है। सूचना एवं प्रौद्योगिकी के कारण अकुशल श्रमिकों के लिए रोजगार के अवसर कम हुए हैं। वर्णित संदर्भ में रोजगारपरक कौशल विकास की शिक्षण सुविधा की मांग में स्वाभाविक वृद्धि हुई है। ऐसी परिस्थिति में शैक्षणिक सुधार की दृष्टि से गुणवतायुक्त कौशल विकास तथा मूल्य आधारित बुनियादी शिक्षा की प्रासंगिकता को प्राथमिकता देना अनिवार्य प्रतीत होता है।

*प्रध्यापक, पटना ट्रेनिंग कालेज, दरियापुर, बांकीपुर, पटना–800 004

ऐतिहासिक पृष्टभूमि

उल्लेखनीय है कि गांधीजी के शैक्षणिक प्रयोग की आरंभिक प्रयोगशाला चम्पारण था। निलहें साहबों के अत्याचार के विरुद्ध चम्पारण सत्याग्रह (1917) के दौरान गांधीजी ने अनुभव किया कि शिक्षा के अभाव में अनेक तरह की बुराइयों से जर्जर समाज में राष्ट्रीय पुनर्जागरण या सामाजिक तथा आर्थिक विकास का सपना अधूरा रह जायेगा। उनकी सोच थी कि ''स्थाई तरह का काम सही ढंग से ग्रामीण शिक्षा के अभाव में असंभव होगा।'' अतएव किसानों की समस्या की जांच के लिए गठित स्लाई समिति जिसमें गांधी किसानों का प्रतिनिधित्व करते थे, उस जांच समिति का कार्य पूरा होते ही वे ग्रामीण विद्यालयों की स्थापना संबंधी योजना को मूर्त रूप देने में सलग्न हो गए। उनकी अपेक्षा थी की गांव वाले स्कूल के लिए उपयुक्त स्थान तथा शिक्षकों के आवास और भोजन की जिम्मेवारी निभाएंगें। सुयोग्य एवं सर्मपित शिक्षकों की सेवा उपलब्ध कराना कठिन समस्या थी। गांधी जी की दृष्टि में शिक्षकों की शैक्षणिक योग्यता की अपेक्षा नैनिकता अधिक महत्वपूर्ण थी।

उनका ध्यान बम्बई प्रान्त में प्रार्थना समाज, सर्वेन्टस ऑफ इंडिया सोसाइटी तथा डेक्कान एजुकेशन सोसाइटी के समर्पित स्वयंसेवकों की ओर गया। स्वयंसेवक-शिक्षकों की सेवा प्राप्ति के लिए गांधीजी की सार्वजनिक अपील का बड़ा ही 'संतोषजनक परिणाम हुआ।' 8 नवम्बर, 1917 को बम्बई प्रान्त (वर्तमान महाराष्ट्र तथा गुजरात) से शिक्षा प्रेमी एवं सुसंस्कृत कुछ महिलाएं एवं पुरुष स्वयंसेवी शिक्षकों के साथ गांधीजी चम्पारण लौटे।

संयोगवश पूर्वी चम्पारण में ढाका के निकट बरहवा लखनसेन के उदार दानदाता श्री शिवगुलाम लाल ने अपना मकान प्राथमिक विद्यालय के संचालन के लिए सौंप दिया और गांव वालों ने अन्य प्रकार की सहायता और सहयोग के लिए विश्वास दिलाया। फलत: गांधीजी ने 14 नवम्बर, 1917 को बरहरवा लखनसेन में प्राथमिक विद्यालय में पढ़ाई का शुभारम्भ कराया। यूरोपियन प्रशिक्षण प्राप्त प्रख्यात इंजीनियर श्री बबन गोखले एवं उनकी पत्नी श्रीमती अवन्तिका बाई गोखले जो सुशिक्षित शिक्षिका एवं प्रशिक्षित नर्स थीं, की सेवाएं शिक्षण कार्य के लिए उपलब्ध करायी गयीं।

गांधी जी को संबोधित विद्यालय की प्रगति संबंधी अपने प्रतिवेदन में श्री बबन गोखले ने 6 दिसम्बर, 1917 को सूचित किया कि छात्र-छात्राओं की संख्या 75 हो गयी है। स्वच्छता अभियान की सफलता के बारे में जानकारी दी गयी कि सभी कुंओं को स्वच्छ तथा उपयोगी बना दिया गया है। कुंओं के समीपस्थ नालियों को हटाना पड़ा है, क्योंकि नालियों के कारण कुंओं का जल प्रदूषित हो रहा था। अपने घर के निकट शौच तथा पेशाब करने की गन्दी आदतों को दूर करने का प्रयास किया जा रहा है। प्राथमिक

शिक्षा और ग्रामीण सफाई के लिए प्रमुख लोगों की समितियां गठित कर दी गयी हैं। इस प्रतिवेदन से शिक्षकों की व्यापक भूमिका की जानकारी मिलती है। शिक्षण कार्यों के साथ स्वच्छता, ग्रामीण स्वास्थ्य की समस्याओं के समाधाान तथा समाजिक संस्कृति में सुधार की ओर भी गांधीवादी शिक्षक समान अभिरुचि रखते थे। अतएव वे ग्रामीण पुनर्जागरण–कार्यक्रमों को सफल बनाने में अनमोल सहायक सिद्ध हुए।

पश्चिम चम्पारण जिला के मुख्यालय बेतिया से लगभग 40 मील उत्तर–पश्चिम में स्थित भितहरवा गांव में गांधी जी ने 20 नवम्बर 1917 को दूसरे प्राथमिक विद्यालय की स्थापना की। उस विद्यालय के संचालन के लिए बेलांव (बम्बई) के सार्वजनिक कार्यकर्ता श्री सदाशिव लक्ष्मण सोमन, बी.ए.एल.एल.बी., अनुभवी चिकित्सक तथा सर्जन डॉ. देव के सहायक शिक्षक श्री बालकृष्ण योगेश्वर पुरोहित, श्रीमती कस्तूरबा गांधी तथा तीन अन्य स्वयंसेवकों की सेवाएं उपलब्ध करायी गयीं।

उस विद्यालय के सफल संचालन के दौरान डॉ. देव ने उत्कृष्ट समाजसेवी के प्रेरणादायक आचरण का उदाहरण प्रस्तुत किया। भितहरवा स्कूल की झोपड़ी रात में आग लगने से जलकर राख हो गयी। अपने सहकर्मियों सहित डॉ. देव ने स्वयं ही अपने सिर पर ईंट और अन्य निर्माण सामग्री उठाकर जल्द–से–जल्द स्कूल का पक्का भवन बनवा दिया। उनकी प्रेरणा से निर्माण कार्यों में ग्रामीणों ने भी सक्रिय सहभागिता निभायी। प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द प्रसाद के शब्दों में भितहरवा का स्कूल भवन ''डा. देव के प्रशंसनीय कार्य का स्मारक था।''

सेठ घनश्यामदास के सहयोग से 17 जनवरी 1918 को गांधी जी ने मधुबन में तीसरे प्राथमिक विद्यालय की स्थापना की। उस विद्यालय का प्रभार श्री नरहरी द्वारिका दास पारिख और उनकी पत्नी श्रीमती मणिबाई पारिख, महादेव देसाई और उनकी पत्नी दुर्गावाई देसाई, श्रीमती आनन्दी बाई को सौंपा गया। तीनों विद्यालय आश्रम की तरह संचालित किए जाते थे। उनका व्यापक शैक्षणिक प्रभाव आसपास के गांवों पर भी पड़ा और सामाजिक पुनर्जागरण की भावना का संचार हुआ। इस प्रयोग की दूरगामी चर्चा करते हुए डॉ. राजेन्द्र प्रसाद (प्रथम राष्ट्रपति, भारत) ने अपनी पुस्तक ''चम्पारण में महात्मा गांधी'' में स्पष्ट किया कि बुनियादी विद्यालयों का प्रभाव केवल छात्रों पर ही नहीं बल्कि वहां के आपपास रहनेवालों पर भी पड़ा, यहां तक की इन गांवों की पर्दे में रहनेवाली स्त्रियां भी इस लाभ से वंचित नहीं रहीं। यदि यह काम कुछ दिनों तक और जारी रहता तो बिहार की हालत सुधर जाती। समर्पित समाजसेवियों के अभाव के चलते गांधी जी का प्रयोग प्रारंभिक दौर में स्थायी नहीं बन पाया।''

गांधी जी ने शिक्षा संबंधी अपने विचारों से चम्पारण के तत्कालीन जिलाधिकारी को

भी अवगत कराया। अपने शैक्षणिक प्रयोग के क्रम में चम्पारण जिले के तत्कालीन जिलाधिकारी जे.एल. मेरीमेन को संबोधित 19 नवम्बर 1917 के अपने पत्र में गांधी जी ने लिखा कि ''आपकी वर्तमान शिक्षा प्रणाली से मैं घबड़ाता हूँ। उससे बच्चों के नैतिक एवं मानवीय विकास करने के बदले, उन्हें कुंठित किया जाता है। वर्तमान प्रणाली की विशेषताओं को ग्रहण करके उसकी जो बुराइयां हैं, उनसे बचने का प्रयत्न करुंगा। गांधी जी की मान्यता थी कि औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली का जीवन की वास्तविकताओं से कोई संबंध नहीं है। अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाने से भारतीय भाषाओं का विकास बाधित हुआ है। छात्रों के कौशल एवं आध्यात्मिक विकास की ओर ध्यान नहीं देने से शिक्षा का उद्देश्य मात्र नौकरी पाना रह गया है। नौकरी नहीं मिलने पर स्वावलम्बन की क्षमता के अभाव के चलते पढ़े-लिखे लोग असामाजिक कार्यों में संसलिप्त हो जाते हैं। औपनिवेशिक शिक्षा की दूसरी प्रमुख कमजोरी यह थी कि उसके पाठ्यक्रमों में मानवीय मूल्यों के विकास का कोई स्थान नहीं था। अतएव वह मानवीय मूल्यों से सम्पन्न सुशिक्षित मानव बल तैयार करने में असफल रही।''

अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त करने में गांधी जी को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था, उसकी विस्तृत चर्चा मेरे सपनों का भारत में किया गया है। गांधी जी का कहना है कि हमारा आधे से अधिक समय अंग्रेजी सीखने और उसके मानमाने वर्तनी तथा उच्चारण का ज्ञान प्राप्त करने में लगता था। ऐसी भाषा का पढ़ना हमारे लिए एक कष्टपूर्ण अनुभव था। जिसका उच्चारण ठीक उसी तरह नहीं होता जैसी कि वह लिखी जाती है। गांधी जी का निष्कर्ष था कि विदेशी भाषा के माध्यम में जिसके जरिये भारत में शिक्षा दी जाती है उससे हमारे राष्ट्र को अपार बौद्धिक और नैतिक क्षति पहुंची है। अतएव उनका परार्मश था कि मातृभाषा को स्कूली स्तर पर शिक्षा का माध्यम बनाया जाय और अंग्रेजी का उपयोग विश्वविद्यालय शिक्षा स्तर में किया जाय।

मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने के कारणों पर प्रकाश डालते हुए गांधीजी ने स्पष्ट किया ''मातृभाषा की अपेक्षा अंग्रेजी भाषा के प्रति हमारे प्रेम के कारण शिक्षित एवं विद्वानों तथा आमजनों के बीच दूरियां बढ़ रही हैं। भारतीय भाषा कमजोर होती जा रही है। अपनी माता के वक्ष:स्थल के प्रति मैं जितना कृतज्ञ हूं, अपनी मातृभाषा में दोष रहने पर भी उनके प्रति उतना ही आभारी रहूंगा। माता का दुग्ध ही एकमात्र ऐसी व्यवस्था है, जो जीवनदान दे सकती है।'' मैं कुछ सीमा तक अंग्रेजी भाषा से प्रेम करता हूं। लेकिन वह अन्यायपूर्वक किसी का स्थान लेने का प्रयास करे तो मैं उसका पूरी तरह से विरोधी भी हूं। अंग्रेजी सम्पूर्ण विश्व के लिए आज की संपर्क भाषा है, लेकिन इसे मैं भाषा के क्षेत्र

में दूसरा स्थान ही देना चहूंगा। इसे विद्यालय में नहीं बल्कि विश्वविद्यालय स्तर के पाठ्यक्रम में स्थान मिलना चाहिए। मातृभाषा के माध्यम से शिक्षण सुविधा मिलने से छात्र-छात्राओं के बौद्धिक विकास में आसानी होती है।

स्वतंत्रता-संग्राम के दौरान सन् 1937 ई. में जब आठ प्रान्तों में कांग्रेस सत्ता में आयी, तब राष्ट्रीय शिक्षा-नीति पर विमर्श के लिए प्रमुख शिक्षाविदों एवं कांग्रेस शासित प्रदेशों के शिक्षा-मंत्रियों का एक सम्मेलन 22-23 अक्टूबर, 1937 को वर्धा में आयोजित किया गया जिसकी अध्यक्षता स्वयं गांधीजी ने की और शिक्षा प्रणाली संबंधी अपने विचारों को सम्मेलन में विचारार्थ प्रस्तुत किया। सम्मेलन ने शिक्षा संबंधी गांधीजी के विचारों को अनुमोदित किया और निर्णय लिया गया कि ऐसी उपयोगी शिक्षा-व्यवस्था लागू की जाय कि सात वर्षों की शिक्षा के बाद छात्र इतने सुयोग्य बन सकें कि वे पढ़ाई का अपना खर्च जुटा सकें तथा अपने परिवार के लिए कमाऊ पूत बन सकें।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के आलोक में पाठ्यक्रम तैयार करने का भार डॉ. जाकिर हुसैन की अध्यक्षता में गठित समिति को सौंपा गया। जो पाठ्यक्रम तैयार किया गया, उसका उद्देश्य छात्रों का संतुलित शारीरिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास के साथ-ही-साथ स्वरोजगारोन्मुखी क्षमता को विकसित करना भी था। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा को माना गया। अतएव भाषा और साहित्य, गणित, पर्यावरण-विज्ञान के साथ ही साथ बुनियादी दस्तकारी तथा कौशल विकास को प्राथमिकता दी गयी। सामाजिक सद्गुण विकसित करने के उद्देश्य से नागरिकता का अभ्यास, रचनात्मक और सांस्कृतिक प्रवृतियों के विकास पर भी जोर दिया गया।

बुनियादी शिक्षा नीति के महत्व को ध्यान में रखकर बिहार में बुनियादी शिक्षा के प्रसार-प्रचार की ओर समुचित प्राथमिकता दी गयी। दानदाताओं के सहयोग से लगभग 300 बुनियादी विद्यालयों की स्थापना बिहार तथा झारखण्ड में की गयी। चम्पारण में पंडित प्रजापति मिश्र के नेतृत्व में 25-30 बुनियादी विद्यालय 1939 के पहले स्थापित किये गए। वेतिया के निकट कुमारबाग, बुनियादी विद्यालयों का एक प्रमुख केन्द्र था, जहां गांधी के नेतृत्व में मई 1939 में कांग्रेस की ओर से एक विशेष सम्मेलन का अयोजन किया गया था। उस सम्मेलन मे गांधीजी के अतिरिक्त अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की कार्यकारिणी समिति के अन्य सदस्यों ने भी भाग लिया। गांधी जी के कुशल नेतृत्व से उत्साहित व्यक्तियों ने बुनियादी विद्यालयों के प्रचार-प्रसार में सराहनीय योगदान दिया।

द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ने पर नवम्बर 1939 में बिहार तथा अन्य प्रान्तों में कांग्रेसी सरकार ने इस्तीफा दे दिया। कांग्रेस सरकार के सत्ता से बाहर जाने के कारण बुनियादी

विद्यालयों का संचालन बन्द नहीं हुआ। जिन वरीय पदाधिकारियों ने इस विद्यालयों का निरीक्षण किया, वे इनकी प्रगति से संतुष्ट थे। अपने निरीक्षण के दौरान डा. राजेन्द्र प्रसाद ने भी इन विद्यालयों के कार्यकलापों पर संतोष व्यक्त किया।

मौजूदा आर्थिक परिवेश में मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने संबंधी मांग को गंभीर चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। शिक्षाविदों का मानना है कि ज्ञान के प्रसार में भारतीय भाषाओं की अहम भूमिका है। अगर इस दिशा में पर्याप्त प्रयास किया जाय तो व्यापक जनसमुदाय तक आसानी से अपनी बात पहुंचाई जा सकती है। किन्तु वैश्वीकरण एवं उदारीकरण के बढ़ते वर्चस्व के कारण पढ़ाई को प्राथमिकता मिल रही है। सम्पन्न परिवार के बच्चे निजी विद्यालयों के माध्यम से अंग्रेजी के माध्यम से प्राप्त होने वाली महंगी शिक्षा का लाभ उठा रहे हैं। गरीबों के बच्चे-बच्चियां, आर्थिक कठिनाइयों के चलते निजी विद्यालय में उपलब्ध सुविधाओं का उपभोग करने में अपने को असमर्थ पाते हैं। आवश्यक है कि भारतीय भाषाओं में महत्वपूर्ण विषयों पर पुस्तकें लिखी जाएं ताकि वे वर्ग जो महंगी शिक्षा का व्ययभार वहन करने में अपने को असमर्थ पाता है, वे भी प्रासंगिक शिक्षण सुविधा के मौलिक अधिकार का लाभ प्राप्त कर सके।

प्रयोगों का समीक्षात्मक प्रतिफल

मार्च, 1946 में बिहार में पुन: कांग्रेस सता में आयी। उस दौरान बुनियादी विद्यालयों के विकास की ओर ध्यान दिया गया। बुनियादी विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के प्रशिक्षण की भी व्यवस्था की गयी। उस दौर में गांधी जी के सच्चे अनुयायी देशभक्तों तथा समाज सुधारकों का अभाव नहीं था। वे बुनियादी विद्यालयों के माध्यम से ग्रामीण जीवन में नई ऊर्जा के संचार से जागृति पैदा करने के लिए संकल्पित थे। सामाजिक सहभागिता की मदद से बुनियादी विद्यालयों के विकास का प्रसार किया गया। शोध कार्यों को प्रोत्साहित करने के लिए दरभंगा जिला अन्तर्गत विरौल में ग्रामीण विकास संस्थान की स्थापना की गयी। इन प्रयासों के बावजूद प्रभावशाली वर्ग में काम के प्रति सम्मानजनक दृष्टिकोण के अभाव के चलते सरकारी नौकरियों के स्थान पर स्वरोजगार के लिए गरीब परिवार अपने बाल मजदूरों की कार्यक्षमता के विकास में बुनियादी विद्यालयों में उपलब्ध सुविधाओं का लाभ नहीं उठा सके। परिणाम यह हुआ कि शिक्षा को उत्पादक कार्यों एवं उत्पादकता से जोड़ने का प्रयोग प्रभावकारी ढंग से सफल नहीं हो पाया तथा स्थानीय स्तर पर शिक्षा आर्थिक विकास की गति को धारदार बनाने वाले औजार के रूप में उभर नहीं पायी।

गांधी जी शिक्षा को उत्पादन कार्यों से जोड़ने के लिए संकल्पित थे। उनकी मान्यता थी की ''शिक्षा के बिना कार्य एक यांत्रिक निरसत्ता (कोल्हू के बैल समान) है और कार्य

के बिना शिक्षा चिरस्थाई परीधीनता, शोषण और हिंसा का जनक है।'' आमलोगों में ऐसे दूरगामी सोच का अभाव था। शिक्षा के संदर्भ में उत्पादन कार्यों की महत्वपूर्ण भूमिका को वे समझ नहीं पाए। परिणामस्वरूप ग्रामीण समाज, स्वनियोजन तथा रोजगार के अवसरों के सृजन में विफल रहा। बुनियादी शिक्षण-प्रणाली का लाभ उठाते हुए ग्रामीण कुटीर उद्योग को पुनर्जागृत करने का सपना साकार नहीं हो पाया।

धीरे-धीरे बुनियादी शिक्षा की लोकप्रियता समाप्त होने लगी। सरकार की ओर से भी उनके सुदृढ़ीकरण की ओर ध्यान नहीं दिया गया। चीनी आक्रमण (1962), भारत-पाक (1965) तथा बिहार का अकाल (1966-67) के चलते बिहार सरकार को गम्भीर आर्थिक चुनौतियों का सामना करना पड़ा। वैसी स्थिति में बुनियादी विद्यालयों के रख-रखाव तथा उनके संबर्धन के लिए अपेक्षित संसाधनों की व्यवस्था नहीं की जा सकी। 1967-1979 के बीच बिहार में राजनीतिक अस्थिरता भी थी। वर्णित संदर्भ में बुनियादी विद्यालयों की स्थिति बद से बदतर हो गयी। कोठारी आयोग ने अपनी अनुशंसा में कौशल विकास की ओर ध्यान आकृष्ट किया था, किन्तु उन अनुशंसाओं का लाभ उठाकर इन विद्यालयों को पुनर्जीवित करने का प्रयास नहीं किया गया। परिणामस्वरूप कौशलयुक्त मानव संसाधन की तैयारी में बिहार को अपेक्षित सफलता नहीं मिली।

वर्तमान सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक चुनौतियों का सफल मुकाबला के लिए भी मूल्य आधारित गांधी शिक्षा दर्शन की प्रासंगिकता को नजरन्दाज करना भारी भूल होगी। उल्लेखनीय है कि भारत ऐसे गरीब देश की विषमता दूर करने और विकास की गति को तेज करने के लिए धन का सदुपयोग तथा दान की प्रवृति को सुदृढ़ करने के लिए गांधीजी ने अपरिग्रह, सेवा एवं त्याग को अमोघ अस्त्र के रूप में प्रयोग किया। अपरिग्रह के बारे में गांधीजी की दलील थी कि हमारी सभ्यता, हमारी संस्कृति और हमारा स्वराज अपनी आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं को बढ़ाने पर निर्भर नहीं करता बल्कि इस पर नियंत्रण और स्वनिषेध पर निर्भर करता है। उनका विश्वास था कि अपनी आवश्यकताओं को स्वैच्छिक ढंग से सीमित करने से संतोष, सुख एवं मानसिक शान्ति मिलती है तथा सेवा की क्षमता विकसित होती है। उनका सुझाव था कि कोई भी व्यक्ति सतत् प्रयास से अपनी आवश्यकताओं को सीमित करने में सफल हो सकता है।

स्पष्ट है कि गांधी जी के अपरिग्रह, सेवा, त्याग एवं कर्मयोग के सिद्धान्तों की भावनाओं को छात्रों में यदि हम अपनी शिक्षा प्रणाली के माध्यम से विकसित करने में सफल होते, तो हमारी अनेक समस्याओं का समाधान स्वत: हो जाता। समाज सेवा की भावनाओं को विकसित करने के उद्देश्य से कोठारी आयोग का सुझाव था कि समाज सेवा को शिक्षा

के सभी स्तर के पाठ्यक्रमों के अभिन्न अंग के रूप में अपनाना चाहिए। प्रतिबद्धता के अभाव में आयोग की सुसंगत अनुशंसाओं का सफल कार्यान्वयन नहीं हो पाया ।

शिक्षा-प्रणाली से अपेक्षा की जाती है कि छात्रों में अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं एवं मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता जागृत करने में सबल सहायक बनें। मूल्यों के विकास में शिक्षा की अहम भूमिका को ध्यान में रखते हुए कोठारी आयोग ने अनुशंसा की कि ''शिक्षा प्रणाली को मूलभूत सामाजिक, नैतिक और अध्यात्मिक मूल्यों का विकास करना चाहिए। राज्यों को अपनी सभी संस्थाओं में नैतिक सामाजिक और अध्यात्मिक शिक्षा प्रदान करने हेतु आवश्यक कदम उठाने चाहिए।'' इस दायित्व के निर्वहन के लिए गांधी दर्शन की प्रासंगिकता की ओर ध्यान देना आवश्यक दीखता है।

गांधीवादी दर्शन का समर्थन करते हुए डा. कर्ण सिंह का सुझाव है कि ''शिक्षा में ऐसे जीवनदर्शन की अभिव्यक्ति होनी चाहिए जिसमें सौहार्द्र, प्रेम, अहिंसा, भाईचारा, पर्यावरण के प्रति सम्मान और मूलभूत अध्यात्मिक जागरूकता समाविष्ट हो।'' आपसी सौहार्द बढ़ाने के बारे में गांधीजी का सुझाव था कि ''एकता विकसित करने का सर्वोत्तम मार्ग है कि हम सभी एक दूसरे का दु:ख-दर्द आपस में बांटते हुए सामंजस्य एवं सहनशीलता के साथ सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति हेतु आपसी सहयोग बनाए रखें।'' भारतीयता के पक्ष को उजागर करते हुए गांधीजी का संदेश था कि ''हम किसी भी जाति, वर्ग या समुदाय के हों या किसी भी प्रदेश में रहते हों, हम आदि से अन्त तक भारतीय हैं।''

गांधीजी 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा के प्रबल समर्थक थे। शान्ति एवं सुरक्षा के लिए उनका परामर्श था कि ''सारी दुनिया को मित्र बनाने का सबसे सुनहरा मार्ग यही होगा कि पूरी मानवता को एक परिवार के रूप में सम्मान दिया जाय। जो अपने और दूसरों के परिवार में भेद रखते हैं, वे अपने सदस्यों को गलत शिक्षा देकर विरोध, कलह और अधर्म का मार्ग खोलते हैं। यदि हम एक दूसरे से लड़ते-झगड़ते रहे तो निश्चित ही हमारी स्वतंत्रता वायु में विलीन हो जाएगी और भारत में ब्रिटिश अथवा कोई और तीसरी शक्ति अपनी जड़ें जमा लेगी।'' वैश्वीकरण के कुप्रभाव को नियंत्रित करने के उद्देश्य से भी आवश्यक है कि गांधीवादी विचारों का आदर करते हुए छात्र-छात्राओं में पारस्परिक प्रेम और सहयोग की भावना को विकसित करने का सक्रिय प्रयास किया जाय।

वर्णित विफलताओं तथा समस्याओं को ध्यान में रखते हुए मूल्य आधारित शिक्षा के प्रचार-प्रसार का औचित्य बढ़ गया है। डॉ. कर्ण सिंह का सही मूल्यांकन है कि ''जब तक सबके लिए शिक्षा को वैश्विक सार्वभौमिक और वांछित मूल्य प्रणाली से जोड़ा नहीं जाता तब तक उसका कोई लाभ नहीं है।'' मानवता के भविष्य की सुरक्षा के लिए

आवश्यकता है कि शिक्षा के उद्देश्य शान्ति प्रक्रिया को सुदृढ़ करना माना जाय। जब तक शिक्षा व्यवस्था के माध्यम से गांधीवादी विचारों का व्यापक प्रचार-प्रसार नहीं होगा, तब तक स्थायी शान्ति के लिए मानसिकता का निर्माण नहीं हो पाएगा। शिक्षा के माध्यम से सोच में बदलाव की प्रक्रिया का शुभारम्भ आवश्यक है।

भावी रणनीति

वर्तमान सामाजिक तथा आर्थिक परिवेश में ज्ञान कर्मियों की मांग कैसे पूरी की जाय यह एक महत्वपूर्ण प्रशासनिक चुनौती है। इस समस्या के समाधान के लिए सरकार की ओर से कौशल विकास की अनेक योजनाएं कार्यान्वित की जा रही हैं। नीतिगत निर्णय है कि उच्च विद्यालयों (वर्ग-9, वर्ग-12) में सामान्य शिक्षा के साथ-साथ व्यावसायिक शिक्षण-सुविधा उपलब्ध करायी जाय ताकि छात्र-छात्राओं को कौशल विकास का समुचित अवसर मिल सके। बिहार कृषि-प्रधान राज्य है। अतएव कृषि, पशुपालन तथा मत्स्य विकास की योजनाओं को समुचित प्राथमिकता दी जा रही है। इन क्षेत्रों के लिए आवश्यक प्रशिक्षित मानवबल की तैयारी में पुनर्जीवित बुनियादी विद्यालय महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इन विद्यालयों में खेती, बागवानी, तालाब आदि के लिए पर्याप्त भूमि उपलब्ध है, जिसका सदुपयोग कर कृषि आधारित प्रसंस्करण उद्योग के लिए प्रशिक्षित मानव बल तैयार किया जा सकता है।

ज्ञातव्य है कि ज्ञान का उद्योग के रूप में परिवर्तित करने की जगह कौशल विकास तथा मानवीय मूल्यों के संरक्षण में संतुलन बनाए रखने के सबल माध्यम के रूप में उपयोग किया जाय। इन विद्यालयों के लिए पाठ्यक्रमों के निर्माण में यूनेस्को द्वारा शिक्षा के जिन चार उद्देश्यों की चर्चा की गयी है, उसे ध्यान में रखा जाय : "Learning to know, learning to do, Learning to be and Learning to live, भारतवासियों के लिए यह गौरव का विषय है कि राष्ट्रपिता गांधी ने शिक्षा में जिन तत्वों के समावेश पर बल दिया और जिसे बुनियादी शिक्षा का आधार बनाया गया, उसे यूनेस्को जैसी लब्धप्रतिष्ठ संस्था ने भी स्वीकार किया है।

हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली की मुख्य कमजोरी को उजागर करते हुए प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री डॉ. जे.पी. नायक का भी कहना है कि ''यह कौशल और मूल्य संबर्धन में कमजोर है'' इन कमजोरियों के चलते मौजूदा शिक्षण-व्यवस्था समाज की ज्वलन्त समस्याओं यथा भ्रष्टाचार, अपराधिक प्रवृत्तियों का बढ़ता वर्चस्व, साम्प्रदायिकता, जाातीयता, क्षेत्रीयता, उग्रवाद, आतंकवाद आदि का समाधान खोजने के लिए मानवीय मूल्यों के विकास को शिक्षण-प्रणाली के अभिन्न अंग के रूप में अपनाया जाय।

प्रारंम्भिक अवस्था से छात्र-छात्राओं में मानवीय मूल्यों एवं स्वच्छता के संस्कार को विकसित करने के लिए आवश्यक है कि कोठारी आयोग की अनुशंसाओं को कार्यान्वित करने का सच्चा प्रयास किया जाय ताकि हमारी शिक्षा प्रणाली निष्ठावान, जवाबदेह तथा कौशल सम्पन्न नागरिक तैयार करने में सफल हो। इन उद्देश्यों की प्राप्ति में बिहार के बुनियादी विद्यालयों को पुनर्जीवित करने की योजना से पूरी सहायता मिलेगी। प्रसन्नता का विषय है कि बुनियादी शिक्षा के विभिन्न पहलुओं के बारे में विमर्श के एजेन्डा को प्राथमिकता दी जा रही है।

संदर्भ

प्रो. यशपाल, *प्रभात खबर,* दीपावली विशेषांक 2011 पृ. 140

डा. काली किंकर दत (1974), *बिहार में स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास* खंड-1; अनुवादक- (डॉ. विष्णु अनुग्रह नारायण) बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना पृ. 285

वही, पृ. 286

वही

वही पृ. 288

वही

डा. राजेन्द्र प्रसाद, *महात्मा गांधी एण्ड बिहार* पृ. 32-33

डा. राजेन्द्र प्रसाद, (1966)-*महात्मा गांधी,* 1965

मिश्र, बी.वी. (1963)-*महात्मा गांधी मूवमेन्ट इन चम्पारण,* बिहार सरकार प्रेस, गुलजारबाग, पटना

मो.क. गांधी, (सम्पादक-सिद्धराज चड्ढा) मेरे सपनों का भारत, सर्व सेवा संघ प्रकाशन वाराणसी, 1999, पृ. 90-96

डा. आई.सी. कुमार (2005) *गांधी दर्शन की वर्तमान प्रासंगिकता,* वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा पृ. 57-58

प्रो. जे.पी. नायक (1977), *सम परस्पेटिव्स ऑन नन फोरमल एजुकेशन,* पृ.-34

न्यायमूर्ति एम. रमा जोइस-(1996) *धर्म द ग्लोबल इथिक,* पृ. 71

डी.एस. कोठारी (1996) *रिपोर्ट ऑफ द एजुकेशन कमिशन,* पृ. 18-22

डा. कर्ण सिंह (1966)-*एजुकेशन फौर ऑल समीट ऑफ नाइन हाई पोपुलेशन कन्ट्रीज, (Education For All Summit of Nine High Population Countries)* यूनेस्को

न्यायमूर्ति एम. रमा जोइस (2003), *गांधी क्रीड आवर डीड (Gandhi's Creed, Our Deed)*

यूनेस्को, 1996

प्रो. जे.पी. नायक (1977) पृ. 11

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 3, दिसंबर 2013

अधिगम में स्व-मूल्यांकन का संप्रत्यय, प्रक्रिया एवं महत्व

महेश नारायण दीक्षित*

सारांश

ज्ञान आधारित 21वीं सदी में शिक्षा का उद्देश्य बालक का चहुमुखी विकास कर उसे एक आत्मनिर्भर एवं उत्तरदायी नागरिक के रूप में विकसित करने के साथ-ही-साथ आजीवन अध्येता बनने में भी मदद करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए शिक्षा प्रक्रिया में एक सुव्यवस्थित सोपानों की श्रृंखला बनाई गयी है जिसमें मूल्यांकन भी एक महत्त्वपूर्ण सोपान है। मूलत: मूल्यांकन का उद्देश्य निदान एवं उपचार से जुड़ा हुआ है परन्तु दुर्भाग्यवश आज मूल्यांकन का अर्थ मात्र परीक्षा तक ही सीमित कर दिया गया है जो विद्यार्थीयों को पास या फेल करने का काम कर रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यांकन के इस जड़ एवं अवैज्ञानिक स्वरूप को सुधारने के लिए अनेक अनुसंधान किये गए और किये जा रहे हैं। इन अनुसंधानों के परिणामस्वरूप मापन मूल्यांकन के क्षेत्र में अनेक नवाचारों का प्रारम्भ हुआ है। इन नवाचारों में स्व-मूल्यांकन का संप्रत्यय महत्त्वपूर्ण है जो आजीवन अध्येता के निर्माण में सहायक है। प्रस्तुत प्रपत्र में अधिगम के संदर्भ में स्व-मूल्यांकन के संप्रत्यय, प्रक्रिया, प्रतिमान, प्रशिक्षण एवं महत्त्व का विस्तार से विवेचन किया गया है।

शिक्षा एक गतिशील प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य बालक का चहुमुखी विकास कर उसे एक आत्मनिर्भर एवं उत्तरदायी नागरिक के रूप में विकसित होने में मदद करने के साथ-ही-साथ आजीवन अधिगमी (लाइफ लांग लर्नर) के रूप में भी विकसित करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए शिक्षा प्रक्रिया में एक सुव्यवस्थित सोपानों की श्रृंखला बनाई गयी है जिसका अनुसरण कर अध्ययन-अध्यापन की प्रक्रिया अपने निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करती है। इन सोपानों में पहला सोपान शिक्षा क्यों दी जाए अथवा अध्ययन क्यों किया जाय, का उत्तर प्राप्त करना अनिवार्य होता है जिसके माध्यम से शिक्षा के उद्देश्यों का

*सहायक प्राध्यापक, शिक्षण महाविद्यालय (आईएएसई), गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद-14

निर्धारण होता है। इस प्रथम सोपान के पश्चात ही अन्य सोपान जिसमें पाठ्यक्रम निर्धारण, अध्ययन-अध्यापन संबंधित व्यूह की रचना, समय एवं संसाधन संबंधित आयोजन, प्रकिया का अमलीकरण एवं अंतिम सोपान के रूप में अध्ययन-अध्यापन की प्रक्रिया के मूल्यांकन की बातों का निश्चय एवं अमलीकरण किया जाता है।

शिक्षा की इस पूरी व्यवस्था में जितना महत्त्व उद्देश्य निर्धारण को दिया जाता है उतना ही महत्त्वपूर्ण स्थान मूल्यांकन की प्रक्रिया का भी है। मूल्यांकन के माध्यम से ही एक शिक्षक अथवा अध्येता अध्ययन संबंधी उद्देश्यों की प्राप्ति कहाँ तक हो पाई है, का निर्धारण करता है। साथ ही निदानात्मक एवं उपचारात्मक कार्यक्रमों के बारे में निर्णय लेता है।

मूलतः मूल्यांकन का उद्देश्य निदान एवं उपचार से जुड़ा हुआ है परन्तु दुर्भाग्यवश आज मूल्यांकन का अर्थ मात्र परीक्षा तक ही सीमित कर दिया गया है जो विद्यार्थीयों को पास या फेल करने का काम कर रही है। शिक्षा के क्षेत्र में प्रचलित बाह्य परीक्षा पद्धति निष्पक्षता एवं वस्तुनिष्ठता के नाम पर पूर्णतया शिक्षक केंद्रित है। इसमें भी हद यह कि जो शिक्षक अध्यापन करता है उसकी बजाय कोई अन्य शिक्षक इस पूरी परीक्षा के केन्द्र में होता है; और वही विद्यार्थीयों की परीक्षा लेता है। इसके परिणामस्वरूप परीक्षा में से निदान का तत्व पूरी तरह नष्ट हो जाता है और उसकी जगह ले लेता है पास या फेल होने का प्रमाणपत्र।

शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यांकन के इस जड़ एवं अवैज्ञानिक स्वरूप को सुधारने के लिए अनेक अनुसंधान किये गए और किये जा रहे हैं। इन अनुसंधानों के परिणामस्वरूप मापन मूल्यांकन के क्षेत्र में अनेक नवाचारों का प्रारम्भ हुआ है। इन नवाचारों में संरचनात्मक तथा योगात्मक मूल्यांकन (फॉरमैटिव एंड सम्मेटिव इवैल्यूवेशन), निकष संदर्भित एवं मानक संदर्भित परीक्षण (क्रॉइटेरियन एंड नॉर्म रिफरेन्स्ड टेस्ट), खुली पुस्तक परीक्षा (ओपन बुक इग्जामिनेशन), सतत एवं व्यापक मूल्यांकन (कॉनटिनिवस एंड कॉम्प्रेहेनसिव इवैल्यूएशन), सतत आन्तरिक मूल्यांकन (कॉन्टिनिवस इन्टरनल इवैल्यूएशन), न्यूनतम अधिगम स्तर (मिनिमम लेवल ऑफ लर्निंग) तथा स्व-मूल्यांकन (सेल्फ-इवैल्यूएशन) इत्यादि शामिल हैं।

सिद्धांततः मूल्यांकन की प्रक्रिया को दो भागों में बाँटा जा सकता है– (1) दूसरे व्यक्ति या बाह्य परीक्षक द्वारा किया जाने वाला मूल्यांकन एवं (2) अध्येता द्वारा किया जाने वाला स्व-मूल्यांकन।

दूसरे व्यक्ति या बाह्य परीक्षक के द्वारा किये जाने वाले मूल्यांकन को वस्तुनिष्ठता एवं निष्पक्षता के नाम पर आजकल अधिक महत्त्व प्रदान किया जा रहा है और स्व-मूल्यांकन के एक उत्कृष्ट आयाम को भूला दिया गया है। मूल्यांकन की प्रक्रिया में बाह्य परीक्षा व्यवस्था ने सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था के सामने प्रश्नचिह्न खड़ा कर दिया है। परीक्षा, शिक्षा व्यवस्था के केन्द्र में आ गयी है। विद्यार्थी अपने विद्याकीय क्षमता को बढ़ाने की अपेक्षा परीक्षा में कैसे अधिक मार्क या उच्च ग्रेड लाया जाए, के बारे में अधिक सोचते हैं जिसका सीधा असर शिक्षा की गुणवत्ता पर पड़ रहा है। विविध राज्यों की बोर्ड परीक्षाओं एवं विश्वविद्यालयों में से उच्च अंक अथवा ग्रेड के साथ उत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थियों का प्रतिशत सतत बढ़ता जा रहा है फिर भी जनसंख्या के दृष्टिकोण से दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा देश विद्याकीय क्षेत्र में प्रदान (पेटेन्ट, नयी खोज, जीवन स्तर, सामाजिक सौहार्द इत्यादि) के मामले में कहीं बहुत पीछे खड़ा है। अतः यह अत्यंत आवश्यक हो चुका है कि मूल्यांकन की वर्तमान प्रक्रिया में सुधार लाया जाए एवं विद्यार्थियों को उच्च अधिगम क्षमताओं के विकास के लिए प्रोत्साहित किया जाए। इस काम में स्व-मूल्यांकन की प्रवृत्ति अत्यन्त उपयोगी होगी।

स्व-मूल्यांकन (सेल्फ-इवैल्यूएशन)

स्व-मूल्यांकन दो शब्दों का योग है, स्व एवं मूल्यांकन। इसमें 'स्व' शब्द मूल्यांकन की विशेषता बतलाता है। स्व-मूल्यांकन के संप्रत्यय को समझने के पूर्व मूल्यांकन के संप्रत्यय को समझना आवश्यक है।

मूल्यांकन का शाब्दिक अर्थ, मूल्य का अंकन करना है। दूसरे शब्दों में मूल्यांकन, मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया है जिसमें अनेक सोपानों का अनुसरणकर किसी कार्य, वस्तु, विचार या व्यक्ति के गुणों का मूल्य आंका जाता है। मूल्यांकन की प्रक्रिया में पहला सोपान मापन का होता है। मापन, मूल्यांकन की प्रक्रिया का एक अंग है। मापन के अंतर्गत किसी व्यक्ति अथवा वस्तु के गुण अथवा विशेषताओं का किसी अंक अथवा संकेत के माध्यम से वर्णन मात्र किया जाता है जबकि मूल्यांकन की प्रक्रिया के अंतर्गत उस व्यक्ति अथवा वस्तु के गुण या विशेषता की वांछनीयता एवं मूल्य का विचार किया जाता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि मूल्यांकन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें मापन से प्राप्त परिणामों की योग्यता का निर्धारण किया जाता है। किसी गुण या विशेषता की कितनी मात्रा व्यक्ति में उपलब्ध है इस प्रश्न का उत्तर मापन से प्राप्त होता है जबकि उस व्यक्ति में उपस्थित गुण या विशेषता की मात्रा पूर्व निर्धारित उद्देश्य या मापदंड की दृष्टि से

कितनी संतोषप्रद अथवा कितनी वांछनीय है इस प्रश्न का उत्तर मूल्यांकन से निर्धारित होता है। किसी प्रश्नपत्र के संदर्भ में छात्र के द्वारा लिखे उत्तर पत्रक पर मिला अंक उसकी शैक्षिक उपलब्धि के मापन का उदाहरण है जबकि छात्रों के प्राप्तांकों के आधार पर उनकी उपलब्धि के स्तर के संबंध में संतोषजनक या असंतोषजनक स्थिति का किसी पूर्व निश्चित मापदंड के संदर्भ में निर्धारण करना मूल्यांकन है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (गुप्ता, 2005, पृ.सं. 14, द्वारा उल्लिखित) ने मूल्यांकन के संप्रत्यय को स्पष्ट करते हुए कहा है कि यह ऐसी सतत एवं व्यवस्थित प्रक्रिया है जो देखती है कि (1) निर्धारित शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हो रही है; (2) कक्षा मे दिये गये शैक्षिक अनुभव कितने प्रभावशाली रहे; तथा (3) शिक्षा के निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति कितने अच्छे तरीके से पूरी हुई?

स्व-मूल्यांकन, मूल्यांकन प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण आयाम है। इसमें किये गए या किये जा रहे स्व-विद्याकीय कार्यों का मूल्यांकन स्वयं अध्येता के द्वारा किया जाता है। अहमद (2010, पृ.स. 445) के अनुसार स्व-मूल्यांकन, स्वयं किये गए प्रदर्शन का स्वयं किया गया मूल्यांकन है। स्व-मूल्यांकन को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें अध्येता सुधार के दृष्टिकोण से प्राप्त परिणामों एवं स्व-प्रयास का स्वयं मूल्यांकन करता है (केलिस, एवं अन्य, 2010)। केल्नोवस्की (1995) ने स्व-मूल्यांकन को परिभाषित करते हुए लिखा है, ''स्व-मूल्यांकन, स्वयं किये गए कार्यों की गुणवत्ता की जाँच, एवं अधिगम (Learning) के परिणामों को और अच्छा बनाने के लिए स्वयं के सार्मथ्य तथा मर्यादाओं को पहचानने की प्रक्रिया है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि स्व-मूल्यांकन स्वयं के कार्यों का स्वयं किया गया मूल्यांकन है जिसका उद्देश्य अधिगम संबंधित कठिनाइयों की पहचान कर अधिगम की प्रक्रिया को अधिक गुणवत्तायुक्त एवं उपादेय बनाना होता है।

स्व-मूल्यांकन की विशेषता

स्व-मूल्यांकन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान करने वाले विद्वानों – मैकमिलन एवं हेरन (2008), मोट्याक एवं अन्य (2010), केलनोवस्की (1995), वूड (2011) एवं रॉस (2010) के विचार एवं उपरोक्त व्याख्या के आधार पर स्व-मूल्यांकन की निम्नलिखित विशेषताएं बताई जा सकतीं हैं :

1. स्व-मूल्यांकन शैक्षणिक मूल्यांकन के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण सुधारात्मक कदम है।
2. स्व-मूल्यांकन में मूल्यांकन करने की जिम्मेदारी अध्येता की होती है।

3. स्व-मूल्यांकन की प्रक्रिया में अध्येता एक सक्रिय भूमिका में होता है।
4. स्व-मूल्यांकन की प्रक्रिया में संरचनात्मक एवं योगात्मक दोनों ही प्रकार का मूल्यांकन अपेक्षित होता है अर्थात अधिगम के अन्त भाग के साथ-ही-साथ अधिगम के दौरान भी अध्येता मूल्यांकन कार्य जारी रखता है।
5. स्व-मूल्यांकन की प्रक्रिया एक योजनाबद्ध प्रक्रिया है।
6. स्व-मूल्यांकन में क्या मूल्यांकित करना है का निश्चय पहले से ही कर लिया जाता है जिसके आधार पर अध्येता अधिगम की प्रक्रिया को आगे बढ़ाता है।
7. स्व-मूल्यांकन की प्रक्रिया में अध्येता अधिगम के दौरान अपने चिन्तन एवं अध्ययन संबंधित व्यवहारों का पर्यवेक्षण एवं मूल्यांकन करता है।
8. इस प्रक्रिया में अध्येता अपने कौशलों एवं समझ को बढ़ाने वाली व्यूह रचनाओं एवं अध्ययन पद्धतियों के चयन से संबंधित निर्णय करता है।
9. यह स्व-कार्यों की सार्थकता एवं निर्थकता के संदर्भ में सघन चिन्तन की प्रक्रिया है।
10. स्व-मूल्यांकन की प्रक्रिया में शिक्षक अथवा मित्र की बजाए अध्येता स्वयं अपने आप को पृष्ठपोषण प्रदान करता है।
11. इस प्रक्रिया में पारदर्शिता एवं स्वयं के प्रति इमानदारी पहली शर्त है।
12. स्व-मूल्यांकन का उद्देश्य अपनी कमियों एवं अच्छाइयों की पहचान कर स्वयं के विकास में सहायक बनना है।
13. किये गए विद्याकीय कार्य के प्रति आत्मसंतोष स्व-मूल्यांकन का अंतिम लक्ष्य है।
14. स्व-मूल्यांकन करने की योग्यता का विकास अध्येता में प्रशिक्षण के माध्यम से किया जा सकता है।
15. स्व-मूल्यांकन की प्रक्रिया में किये गए कार्यों का मूल्यांकन स्वयं जुटाये गये साक्ष्यों के आधार पर पूर्व निर्धारित हेतुओं के आलोक में किया जाता है।

स्व-मूल्यांकन की प्रक्रिया

स्व-मूल्यांकन एक आयोजनबद्ध प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में अध्येता विविध सोपानों का अनुसरण करते हुए आगे बढ़ता है एवं अपने विद्याकीय प्रगति का स्वत: मूल्यांकन करता है। इस प्रक्रिया में संरचनात्मक एवं योगात्मक दोनों ही प्रकार की मूल्यांकन तकनीक का समन्वित उपयोग किया जाता है। स्व-मूल्यांकन की प्रक्रिया कैसे आगे बढ़ती है? इसमें किन-किन सोपानों का अनुसरण कर मूल्यांकन की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया जाता है? किस सोपान पर कौन-कौन से कार्य करने होते हैं? जैसे प्रश्नों को इस क्षेत्र में कार्य करने

वाले विद्वानों ने समझने एवं समझाने का कार्य किया है।

मैकमिलन एवं हेरन (2008) ने स्व-मूल्यांकन की प्रक्रिया में तीन महत्त्वपूर्ण सोपानों को बताया है जो आपस में चक्रिय रूप से अन्तर्संबंधित होते हैं। इन सोपानों में, (1) स्व-पर्यवेक्षण, (2) निर्धारित उद्देश्यों के आलोक में किये गए कार्यों का मूल्यांकन एवं (3) प्रदर्शन विकास के लिए नवीन अथवा संशोधित उद्देश्यों एवं अध्ययन आव्यूहों का निर्धारण सामिल है। मोट्याक एवं अन्य (2010) ने स्व-मूल्यांकन की प्रक्रिया में चार महत्त्वपूर्ण सोपानों (1) अधिगम के हेतुओं की स्पष्ट समझ, (2) कार्ययोजना के अनुसार कार्य, (3) पृष्ठपोषण की प्राप्ति, एवं (4) नये-नये हेतुओं का निर्धारण का उल्लेख किया है। एन्ड्रेड (2011) ने स्व-मूल्यांकन की प्रक्रिया में तीन महत्त्वपूर्ण सोपानों के रूप में (1) उद्देश्य अथवा कार्य के लिए की जा रही अपेक्षाओं (Expectations) का स्पष्टीकरण, (2) किये गए कार्य का मूल्यांकन एवं (3) अपेक्षाओं के आलोक में पुनर्समीक्षा की पहचान की है।

सामान्य रूप से छः सोपानों का अनुसरण कर स्व-मूल्यांकन की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया जा सकता है। इसमें क्रमशः (1) उद्देश्य एवं कार्ययोजना की स्पष्ट समझ; (2) कार्ययोजना अमलीकरण के दौरान स्व-पर्यवेक्षण; (3) आत्म-निरीक्षण एवं अन्य स्रोतों से स्व-प्रगति संबंधी साक्ष्यों का संग्रहण; (4) आत्म-निरीक्षण एवं अन्य स्रोतों से प्राप्त साक्ष्यों का विश्लेषण; (5) पूर्व-निर्धारित उद्देश्यों के संदर्भ में स्व-प्रगति का निर्धारण; एवं (6) स्व-सुधार अथवा प्रगति के लिए नवीन उद्देश्य एवं कार्ययोजना का निर्धारण, ये छः चरण सामिल हैं। ये छः सोपान आपस में चक्रिय रूप से संबंधित हैं। एक चक्र की पूर्णता पर यदि अध्येता को अपनी विद्याकीय प्रगति पर आत्मसंतोष होता है तो वह स्व-विकास के लिए नवीन उद्देश्य एवं कार्ययोजना का निर्धारण कर पुनः इस इस चक्र का अनुपालन करते हुए अपनी प्रगति का स्व-मूल्यांकन कर सकता है अथवा यदि स्व-मूल्यांकन के एक चक्र की पूर्णता पर अध्येता को लगता है कि वह अपेक्षित उद्देश्यों की प्राप्ति पूर्ण रूप से नहीं कर पाया है तो वह पुनः नवीन कार्ययोजना बना कर कार्य पर लग जाता है। इस तथ्य को आकृति-1 में देखा जा सकता है।

सोपान-1. स्व-मूल्यांकन के प्रथम सोपान में, किसलिए सीखना है, किस कौशल्य की प्राप्ति करनी है, निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कार्ययोजना क्या होगी जैसे प्रश्नों का उत्तर प्राप्त कर अध्येता अध्ययन के उद्देश्यों एवं कार्ययोजना की स्पष्ट समझ प्राप्त करता है। इस सोपान में स्व-मर्यादाओं एवं विकास के अवसरों की पहचान कर उनकी प्राप्ति के लिए कार्य योजना का निर्माण करना महत्त्वपूर्ण कार्य होता है।

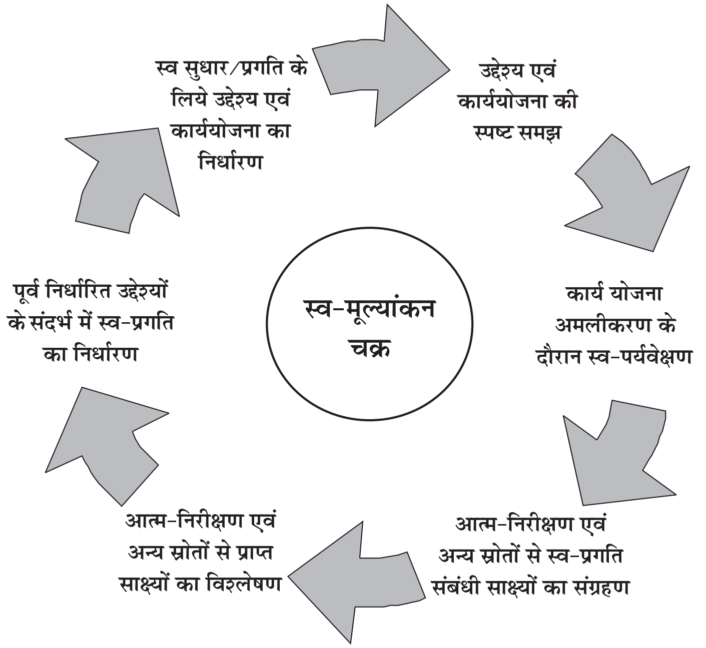

आकृति-1 स्व-मूल्यांकन का छः चक्रिय प्रतिमान

सोपान-2. इस सोपान में अध्येता उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए बनाई गयी कार्ययोजना का अमलीकरण कितनी अच्छी तरह से हो रहा है, निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में कितना आगे बढा जा सका है; निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति तय समय सीमा में हो रही है या नही; अधिगम की प्रक्रिया में कौन-कौन-सी बाधाएं आ रही हैं; अध्येता में कौन-कौन-सी मर्यादाएं दिखलायी पड़ रही हैं जो निर्धारित समय सीमा में उद्देश्यों की प्राप्ति में बाधक साबित हो सकती हैं ईत्यादि प्रश्नों के उत्तर अध्येता अधिगम के दौरान स्व-पर्यवेक्षण के माध्यम से प्राप्त करने का प्रयास करता है। मैकमिलन एवं हेरन (2008) ने स्व-मूल्यांकन में स्व-पर्यवेक्षण को महत्त्वपूर्ण सोपान के रूप में स्वीकार किया है। इस सोपान के अंतर्गत अध्येता अधिगम के दौरान स्व-कार्यों का पर्यवेक्षण करता है एवं क्या, कैसे एवं किस गति से अध्ययन कार्य हो रहा है के बारे में एक समझ विकसित करता है।

सोपान-3. अध्ययन के तृतीय सोपान में अध्येता आत्म-निरीक्षण एवं अन्य स्रोतों (जैसे- मित्रों के अभिप्राय, शिक्षक द्वारा समय-समय पर दिया गया पृष्ठपोषण, चेकलिस्ट, विडियो रिकार्डिंग इत्यादि) से प्राप्त स्व-प्रगति संबंधी साक्ष्यों का संग्रहण करता है। यह प्रक्रिया अधिगम के साथ-साथ ही चलती रहती है।

सोपान-4. इस सोपान का प्रारम्भ अधिगम की पूर्णता पर शुरू होता है जिसमें अध्येता वैज्ञानिक अभिगम अपनाते हुए विविध स्रोतों से प्राप्त साक्ष्यों का विश्लेषण करता है एवं यह निश्चित करता है कि वह कितना, कितनी अच्छी तरह से सीख पाया है? उसके व्यवहार संबंधी कौन-कौन-सी मर्यादाएँ रहीं जो अध्ययन कार्य में बाधक बनीं, किस पक्ष में सुधार की आवश्यकता है, इत्यादि प्रश्नों को उत्तरित करता है।

सोपान-5 इस सोपान में अध्येता पूर्व निर्धारित उद्देश्यों अथवा मापदंड के आलोक में किये गए विद्याकीय प्रगति की जाँच करता है एवं स्व-अध्ययन संबंधित प्रगति की सार्थकता अथवा असार्थकता का निर्धारण करता है।

सोपान-6. यदि अध्येता मापदंड़ों के सापेक्ष अपनी विद्याकीय प्रगति से असंतुष्ट रहता है तो पुनः उपचारात्मक कार्ययोजना बनाकर अधिगम की प्रक्रिया में जुट जाता है एवं स्व-मूल्यांकन के छः सोपानीय प्रतिमान का अनुसरण करते हुए आगे बढ़ता है। यदि मापदंड के आलोक में अध्येता अपने अधिगम प्रक्रिया से पूर्णतया संतुष्ट रहता है तो वह अन्य नवीन कौशल्य अथवा ज्ञान की प्राप्ति के लिए जारी की गयी अधिगम प्रक्रिया में इन सोपानों का अनुसरण कर स्व-मूल्यांकन को आगे बढाता है।

स्व-मूल्यांकन का प्रशिक्षण

रॉस, रोल्हियेसर, एच-ग्रे एवं एन्ने (1998), रॉस, एच-ग्रे एवं रोल्हियेसर (2002), एवं मेकडोनाल्ड एवं डेविड (2003) जैसे विद्वानों ने शोधकार्यों से यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रशिक्षण के माध्यम से विद्यार्थीयों में स्व-मूल्यांकन की क्षमता का प्रभावी तरीके से विकास किया जा सकता है। इस प्रशिक्षणात्मक कार्यक्रम का विद्यार्थीयों की अधिगम की गुणवत्ता पर सार्थक असर पड़ता है। रोल्हियेसर एवं रॉस (2009) ने विद्यार्थियों को स्व-मूल्यांकन की प्रक्रिया का प्रशिक्षण कैसे दिया जाय; के संदंर्भ में चार सोपानीय प्रतिमान की चर्चा की है। इन चार सोपानो में-

1. विद्यार्थियों को मापदंड निर्धारण की प्रक्रिया में जोड़ना जिससे वे इस बात से स्पष्ट रूप से अवगत हो सकें कि किसके आधार पर विद्यार्थी अपने प्रदर्शन का मूल्यांकन करगें।
2. स्व-मूल्यांकन की प्रक्रिया का उदाहरण प्रस्तुत करना जिससे विद्यार्थी यह जान सकें कि निश्चित मापदंड के आधार पर कृत कार्य का मूल्यांकन कैसे करना है?
3. विद्यार्थियों को उनके द्वारा किये गए स्व-मूल्यांकन के संदर्भ में पृष्ठपोषण प्रदान करना।
4. प्रदर्शन में सुधार हेतु विद्यार्थियों को रचनात्मक एवं विकासात्मक उद्देश्यों तथा उसे पूर्ण करने के लिए कार्ययोजना के निर्माण में सहयोग प्रदान करना एवं इसके आलोक में सतत स्व-कार्य का पर्यवेक्षण करते रहने की प्रेरणा देना।

अधिगम में स्व-मूल्यांकन का महत्त्व

आजकल स्व-मूल्यांकन के संप्रत्यय को शिक्षा जगत में एक महत्त्वपूर्ण संप्रत्यय के रूप में देखा जा रहा है। स्व-मूल्यांकन को परीक्षा व्यवस्था में एक सुधारात्मक कदम बताते हुए न्यूमेन (1997), एवं विग्गिन्स (1998) ने इसके पीछे के कारणों को गिनाते हुए कहा है कि यह प्रक्रिया, (1) विद्यार्थियों को उच्च चिन्तन करने का अवसर प्रदान करती है; (2) विद्यार्थियों में वैज्ञानिक स्व-निरीक्षण की आदत का विकास करती है; (3) मूल्यांकन की यह एक पारदर्शी प्रक्रिया है; तथा (4) इसके माध्यम से विद्यार्थियों को कार्य के दरमियान भी स्व-कार्य के बारे में पृष्ठपोषण प्राप्त होता है जिसका उपयोग कर विद्यार्थी अपने कार्य की गुणवत्ता एवं उपयोगिता को बढ़ा सकता है। रॉस (2006), ने अपने शोध के परिणाम स्वरूप यह पाया कि स्व-मूल्यांकन की प्रक्रिया अध्येता को लगातार स्व-प्रगति संबंधी जानकारी प्रदान करने, शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि एवं सद्आदतों के विकास में उपयोगी है। स्व-मूल्यांकन की प्रक्रिया व्यक्ति को उसकी मर्यादाओं एवं शक्तियों की समझ प्रदान करने में सहायक है (वूड्स, 2011)। राहिमी, आयति, एवं असगारी (2013), एन्ड्रेड एवं वॉल्चेव (2009), विकिपीडिया (2013), तथा मैक्मिलन एवं हेरन(2008) ने अधिगम की प्रक्रिया में स्व-मूल्यांकन के महत्व को अपने-अपने शोधों के आधार पर जनसमुदाय के समक्ष रखा है जिसको साररूप में निम्नलिखित रूप संदर्भों में देखा जा सकता है :

1. अध्ययन संबंधी अपनी विशेषताओं एवं मर्यादाओं की पहचान में सहायक है।
2. अधिगम की प्रक्रिया को समझने में सहायता करता है।
3. अधिगम में उपयोगी आव्यूह एवं कौशलों के चयन में दिशा-निर्देश प्राप्त होता है।
4. अधिगम के दौरान विषयवस्तु को समझने में आ रही समस्याओं को खोजने में सहायता मिलती है।
5. अधिगम संबंधी स्व-पृष्ठपोषण प्राप्तकर अधिगम प्रक्रिया के पुनः आयोजन एवं संचालन में सहायता मिलती है।
6. विषयवस्तु को समझने में, उपयोगी विषयवस्तु एवं केन्द्रवर्ती बिन्दुओं को पहचानने तथा उस पर ध्यान केंद्रित करने में मदद मिलती है।
7. इस प्रक्रिया का उपयोग कर अध्येता अधिगम के दौरान अपनी प्रगति एवं समझ का मूल्यांकन कर सकता है।

8. स्व-मूल्यांकन की प्रक्रिया व्यक्ति में उत्तरदयित्व की भावना का विकास करने में सहायक है।
9. स्व-मूल्यांकन की प्रक्रिया गुणवत्तायुक्त स्व-निर्देशित अधिगम करने में व्यक्ति को सहायता प्रदान करती है।
10. स्व-मूल्यांकन की प्रक्रिया आजीवन सिखते रहने में मदद करती है।

उपसंहार

ज्ञानाधारित वर्तमान युग में आजीवन अध्येता बनकर ज्ञान की प्राप्ति करते रहना बहुत ही आवश्यक है। इस प्रक्रिया के सुचारू संचालन के लिए यह आवश्यक है कि अध्येता अधिगम के संदर्भ में आत्मनिर्भर बने। स्व-विकास एवं तेजी से बदलते कार्यक्षेत्र की मांग के अनुरूप स्वयं को प्रासंगिक बनाए रखने के लिए अध्ययन संबंधि उद्देश्यों के निर्धारण से लेकर किये गए कार्य का स्व-मूल्यांकन करने तक की क्षमता का विकास अध्येता में होना आवश्यक है। स्व-मूल्यांकन की सार्थकता अध्ययन के दरमियान आ रही कठिनाइयों एवं समस्याओं के सटीक निदान करने में है। समस्याओं के हल निकालने एवं उपचारात्मक कार्यक्रम के निर्माण में स्व-मूल्यांकन की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। सैद्धांतिक रूप से अपनी अध्ययन संबंधी कठिनाइयों का अनुभव अध्येता अधिक अच्छे तरीके से कर सकता है। वास्तव में स्व-मूल्यांकन की प्रक्रिया का उचित उपयोग कर व्यक्ति 'आत्मदीपो भव' के महामंत्र को चरित्रार्थ कर सकता है।

अनुसंधानों के माध्यम से यह स्पष्ट हो चुका है कि विद्यार्थियों मे प्रशिक्षण के माध्यम से स्व-मूल्यांकन की क्षमता का विकास किया जा सकता है। अत: 21वीं सदी की मांग के अनुरूप स्व-निर्देशित आजीवन अध्येता के निर्माण के लिए स्व-मूल्यांकन की प्रक्रिया का प्रशिक्षण प्राथमिक स्तर से ही शुरु किये जाने की आवश्यकता है। इसके साथ ही शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम में भी स्व-मूल्यांकन को प्रायोगिक रूप में लागू किया जाना चाहिए।

संदर्भ

अहमद, एम. (2008), *कंप्रेहेनसिव डिक्सनरी ऑफ एजूकेशन,* नई दिल्ली, अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्टिब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड.

एन्ड्रेड, एच., एवं वॉल्चेव, ए. (2009). *प्रमोटिंग लर्निंग एंड एचिवमेन्ट थ्रू सेल्फ असेसमेन्ट. थ्योरी इन टू प्रैक्टिस,* वॉल्यूम. 48, इश्यू 1, पृ.सं. 12-19. रिट्रीव्ड ऑन 10 डिसेम्बर 2013 फ्राम http://www-tandfonline-com/doi/abs/10-1080/00405840802577544#-Uxv4&s6habF

आॅर्नोल्ड, एल., विल्लोघवि, टी.एल. , केल्किन्स, इ. वि. (1985). *सेल्फ-इवैल्यूएशन इन अंडरग्रेज्युएट मेडिकल एज्यूकेशन: अ लोंगिट्यूडिनल पर्सपेक्टिव.* जर्नल ऑफ मेडिकल एज्यूकेशन. वो. 60, इश्यू 1, पृ.सं. 21-8. रिट्रीव्ड ऑन 12 डिसेम्बर 2013 फ्रॉम http://www-ncbi-nlm-nih-gov/pubmed/3965720

डॉकी, एफ., सेजर, एम., एवं स्लुइजस्सन्स, डी. (1999). द *यूज ऑफ सेल्फ, पीअर एंड को-असेसमेन्ट इन हायर एज्यूकेशन: एन रिब्यू. स्टडिज इन हायर एजूकेशन,* वोल्यूम. 24, इस्यू 3, पृ.सं. 331-350.

ह्युकिंग, जेड., जैंविन, एच., एडं यिंग, चेन (2012). *इफेक्ट ऑफ सेल्फ-असेसमेन्ट ट्रेनिंग ऑन चाईनिज स्टुडेंट्स परफॉरमेन्स ऑन कॉलेज इंगलिस राईटिंग टेस्ट.* पोलिगलोसिया वॉल्यूम 23, पृ. सं. 33-42. रिट्रीव्ड ऑन 12 जनवरी 214 फ्रॉम r-cube.ritsumei-ac-jp/.../4-Effects/20of%20Self-assessment%20Training...

केलिस, आई., वेर्माडकिस, एन., अल्वेंडिस, ई., एवं कोर्टेसेस, टी. (2010). *दी डेपलेपमेन्ट ऑफ ए स्टुडेन्ट्स सेल्फ-इवैल्यूयेशन स्केल* (एसवीएसएस) इन मल्टिकल्चरल फिजिकल एज्यूकेशन क्लास सेटिंग. एजूकेशनल रिसर्च एंड रिव्यू. वॉल्यूम.5 (11), पृ.सं. 637-645.

क्लेनोवस्की, वी.(1995). *स्टुडेन्ट्स सेल्फ-इवैल्यूवेशन प्रोसेस इन स्टुडेन्ट-सेन्टर्ड टीचिंग एडं लर्निंग कॉन्टेक्स्ट ऑफ ऑस्ट्रेलिया एडं इंग्लैंड. असेसमेन्ट इन एजूकेशन, वॉल्यूम* 2(2), पृ.सं. 145-163.

मैक्डोनॉल्ड, वी., डेविड, वी. (2003). द *इम्पैक्ट ऑफ सेल्फ-असेसमेन्ट ऑन एचिवमेन्ट: द इफेक्ट्स ऑफ सेल्फ-असेसमेन्ट ट्रेनिंग ऑन परफॉर्मेंस इन एक्सटर्नल इग्जामिनेशन. एसेसमेन्ट इन एजूकेशन: प्रिंसिपल्स, पॉलिसिज एडं प्रैक्टिसेज़* वॉल्यूम 10, इस्यू 2, पृ सं. 209-220. रिट्रीव्ड ऑन 10 दिसम्बर 2013 फ्रॉम http://www-tandfonline-com/doi/pdf/10-1080/0969594032000121289#-UtZLk_tAfys

मैकमिलन, जे.एच., एंड हेरन, जे., (2008). *स्टुडेन्ट सेल्फ-असेसमेन्ट: दी की टू स्ट्रॉन्गर स्टुडेन्ट्स मोटिवेशन एडं हॉयर एचिवमेन्ट.* एज्यूकेशनल हॉरिजॉन्स, वॉल्यूम 87, नं. 1, पृ.सं. 40-49. रिट्रीव्ड ऑन 10 दिसम्बर 2013 फ्रॉम http://eric-ed-gov/?id=kEJ815370

मोट्यका, सी., रॉस, आर.एल., एंड ब्रजेउ, जी. (2010). *सेल्फ-असेसमेन्ट इन फॉर्मेसि एडं हेल्थ साईंस एज्यूकेशन एडं प्रोफेशनल प्रैक्टिसेज़* अमेरिकन जर्नल ऑफ फॉर्मास्युटिकल एजूकेशन. वॉल्यूम. 74(5): पृ.सं. 85. रिट्रीव्ड ऑन 10 नवम्बर 2013 फ्रॉम http://www-ncbi-nlm-nih-gov/pmc/articles/PMC2907850@/

न्यूमेन, एफ. (1997). *ऑथेनटिक असेसमेन्ट इन सोसियल स्टडिज: स्टैन्डर्ड एंड एग्जाम्पल्स.* (इन जी. डी पे एडिटेड बुक), *हैन्डवुक ऑफ क्लासरूम असेसमेन्ट: लर्निंग, एड्जस्टमेन्ट एडं एचिवमेन्ट.* सैनडियेगो एकैडेमिक प्रेस.

राहिमि, एस., आयति, एम., एंड असगारी, ए. (2013). द *रिलेशनशिप विटविन टीचर कोर सेल्फ-इवैल्यूएसन, क्लासरूम मैनेजसेन्ट एंड एज्यूकेशनल एचिवमेन्ट.* इन्टरनेसनल जर्नल ऑफ रिसर्च इन ऑर्गनाजेशनल विहैविअर एंड ह्यूमन रिसोर्स मैनेजमेन्ट. वॉल्यूम 1, नं. 4, पृ.सं. 210-217.

राठौर, एन.एस. (2001). *एनआरटीवी: ए कम्प्यूटर प्रोग्राम एंड इट्स मैन्यूअल फॉर दी स्टैस्टिकल कैल्कुलैशन फॉर टेस्ट डेवलपमेन्ट एंड वैलिडेशन* (ए प्लोपि डिस्क एंड इट्स कम्प्यूटर प्रिन्ट आउट). (इन गुजरीती). डिपार्टमेन्ट ऑफ एज्यूकेशन, भावनगर यूनिवर्सिटी.

रॉस, जे.ए. (2005). *इंपेक्ट ऑफ सेल्फ-इवैल्यूएशन ट्रेनिंग ऑन एचिवमेन्टस एंड सेल्फ-एफेकैसी इन कम्प्यूटर सपोर्टेड लर्निंग इनवारॉनमेन्ट्.* पेपर प्रजेन्टेड एट एइआरए. रिट्रीव्ड ऑन 12 जनवरी 2014 फ्रॉम legacy.oise.utoronto.ca/research/../Ross-Starling%20 AERA% 2005.pdf

रॉस, जे.ए. (2006). *दी रिलायविल्टी, वैलिडिटी एंड यूटीलिटी ऑफ सेल्फ-असेसमेन्ट.* प्रैक्टिकल असेसमेन्ट रिसर्च एंड इवैल्यूवैशन. वॉल्यूम 11, नं. 10, पृ.सं. 1-13.

रॉस, जे.ए., रोल्हियेसर, सी., एच-ग्रे, ए. (1998). *इफेक्ट ऑफ सेल्फ-इवैल्यूएशन ट्रेनिंग ऑन नैरेटिव राइटिंग (रिसर्च रिपोर्ट फन्डेड बाई सोसियल साइन्स एंड ह्यूमिनिटी रिसर्च काउनसिल ऑफ कनॉडा, ओटावॉ (ओन्टैरिओ);* ओन्टैरिओ डिपार्टमेन्ट ऑफ एज्यूकेशन, टॉरन्टो) . रिट्रीव्ड ऑन 10 डिसेम्बर 2013 फ्रॉम http://eric.ed.gov/?id=kED424248

रॉस, जे.ए., एच-ग्रे, ए. एंड रोल्हियेसर, सी., (2002). *स्टुडेन्ट सेल्फ-इवैल्यूवेशन इन ग्रेड 5-6 मैथमेटिक्स ऑन प्रब्लम-सॉल्बिंग एचिवमेन्ट.* एजूकेशनल असेसमेन्ट, वॉल्यूम 8, इश्यू 1, पृ. सं. 43-58, रिट्रीव्ड ऑन 12 डिसेम्बर 2013 फ्रॉम http://www.tandfonline.com /doi/abs/10.1207S15326977EA0801_03?journalCode=kheda20#. Uw8m7c6habE

विग्गिन्स, जी.(1998). *एज्यूकेटिव असेसमेन्ट: डिजायनिंग असेसमेन्ट टू इनफॉर्म एंड इम्प्रूव स्टूडेन्ट परफॉर्मेन्स.* सैन फ्रॉंसिस्को: जोसे-बॉस.

विकिपीडिया, दी फ्री इनसाइक्लोपिडिया. *सेल्फ-इवैल्यूवेशन.* रिट्रीव्ड ऑन 02 अक्टूबर 2013 फ्रॉम http://en.wikipedia.org/wiki/Self-evaluation_motives

वूड्स, एस. के. (2011). *सेल्फ-असेसमेन्ट. असेसमेन्ट इन ग्रैजूएट मेडिकल एज्यूकेशन: ए प्राइमर फॉर पेडियेट्रिक प्रोग्राम डॉयरेक्टर्स.* पृ. सं. 29-33. रिट्रीव्ड ऑन 30 नवम्बर 2013 फ्रॉम https://www.abp.org/abpwebsite/publicat/primer.pdf

गुप्ता, एस. (2005). आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन, शारदा पुस्तक भवन, युनिवर्सिटी रोड, इलहाबाद.

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 3, दिसंबर 2013

शोध टिप्पणी/संवाद

माध्यमिक शिक्षा स्तर पर कार्यरत शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता एवं शिक्षक प्रभावशीलता का अध्ययन

प्रीति मौर्य*

सारांश

प्रस्तुत लघु शोध में माध्यमिक शिक्षा स्तर पर कार्यरत शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता एवं शिक्षक प्रभावशीलता का अध्ययन किया गया था। इस अध्ययन का उद्देश्य माध्यमिक शिक्षा स्तर पर कार्यरत शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता एवं शिक्षक प्रभावशीलता के मध्य संबंध का अध्ययन करना था। इस अध्ययन हेतु लखनऊ जिले के यू.पी. बोर्ड के माध्यमिक स्तर के शिक्षकों के समग्र में से 100 शिक्षकों (48 स्त्री/52 पुरुष) का चयन प्रासंगिक प्रतिदर्शन विधि द्वारा किया गया। व्यावसायिक प्रतिबद्धता के लिये रूबीना मैरी द्वारा निर्मित 'टीचर्स प्रोफेशनल कमिटमेंट स्केल' नामक उपकरण का प्रयोग किया गया तथा शिक्षक प्रभावशीलता हेतु स्वनिर्मित उपकरण 'शिक्षक प्रभावशीलता मापनी' का प्रयोग किया गया। इस मापनी में प्रत्येक एकांश हेतु पाँच विकल्प 'पूर्णतया सहमत' से 'पूर्णतया असहमत' के प्रसार के रूप में व्यवस्थित किये गए थे। दोनों उपकरणों से प्राप्त मूल प्राप्तांकों का निर्धारित उद्देश्यों के संदर्भ में मध्यमान, मानक विचलन, टी-मूल्य तथा व्यावसायिक प्रतिबद्धता एवं शिक्षक प्रभावशीलता के मध्य संबंध का अध्ययन करने के लिए गुणनफल आघूर्ण सहसंबंध का प्रयोग किया गया। सांख्यिकीय विश्लेषण के आधार पर 0.05 सार्थकता स्तर पर शून्य परिकल्पना की जाँच की गयी और यह निष्कर्ष पाया गया कि माध्यमिक शिक्षा स्तर पर कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षक समान ढंग से व्यावसायिक रूप से प्रतिबद्ध

*एम.ए. (शिक्षा शास्त्र), एम.एड., नेट, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

थे? माध्यमिक शिक्षा स्तर पर कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों में समान रूप से शिक्षक प्रभावशीलता थी, माध्यमिक शिक्षा स्तर पर कार्यरत शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता एवं शिक्षक प्रभावशीलता के मध्य 0.181 अत्यन्त निम्नस्तरीय धनात्मक सहसंबंध था।

भारत में नही, अपितु संपूर्ण संसार में शिक्षण को एक उदात्त व्यवसाय माना गया है। मानव-इतिहास की श्रेष्ठतम विभूतियों ने इस व्यवसाय को अपनाया है। शिक्षक शिक्षा प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। संपूर्ण शिक्षा प्रक्रिया की धुरी शिक्षक होता है, उसके निर्देशन के अभाव में विद्यार्थी सही दिशा का अनुसरण नहीं कर सकता। किसी भी राष्ट्र की प्रगति वहाँ के शिक्षकों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। इसीलिए विभिन्न व्यवसायों में शिक्षण व्यवसाय को बहुत ही सम्मान की दृष्टि से देखा गया है। अच्छे शिक्षक हमें केवल शिक्षा ही नहीं प्रदान करते अपितु वे हमारे जीवन के निर्माता, सलाहकार, आदर्श, निर्देशक और वे सबकुछ होते हैं जिससे हमारे जीवन को सही दिशा प्राप्त होती है।

हुमायूँ कबीर (1955) का मत है- ''शिक्षा-पद्धति की कुशलता शिक्षकों की योग्यता पर निर्भर है। अच्छे शिक्षकों के अभाव में सर्वोत्तम शिक्षा-पद्धति का भी असफल होना अवश्यम्भावी है। अच्छे शिक्षकों द्वारा शिक्षा-पद्धति के दोषों को भी अधिकांशतः दूर किया जा सकता है।''

शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता व शिक्षक प्रभावशीलता इन दोनों से ही शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया प्रभावित होती है, व्यावसायिक प्रतिबद्धता से तात्पर्य अपने व्यवसाय के प्रति पूर्णतया समर्पित होकर, पूरी लगन व निष्ठा से कार्य करना है। विभिन्न प्रकार के कारक हैं जिनका प्रभाव व्यावसायिक प्रतिबद्धता पर पड़ता है जैसे– उच्च स्तर की स्वायत्तता, विशिष्ट कार्य में अभिप्रेरित करने वाली शक्तियाँ उत्तरदायित्व का उच्च स्तर, स्वयं के कार्य-निष्पादन का संतुष्टि स्तर, कृत्य-संतोष आदि।

शिक्षक प्रभावशीलता से तात्पर्य शिक्षकों के निष्पादन का विद्यार्थियों पर पड़ने वाले प्रभाव से है। शिक्षक प्रभावशीलता को भी अनेक कारक प्रभावित करते हैं जैसे– बुद्धि, शैक्षणिक उपलब्धि, सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति, शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति, समायोजन, व्यक्तित्व कारक आदि।

माध्यमिक स्तर पर भी शिक्षकों की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका है। माध्यमिक स्तर पर शिक्षकों से यह विशेष अपेक्षा की जाती है कि वे व्यावसायिक रूप से प्रतिबद्ध रहें क्योंकि यही शिक्षा भावी जीवन की आधारशिला है। यदि शिक्षक इस स्तर पर अपनी

भूमिका प्रभावपूर्ण ढंग से निभाता है तो विद्यार्थियों का भावी मार्ग प्रशस्त होता है। वैसे शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर इस बात की अपेक्षा की जाती है कि शिक्षक अपने व्यवसाय के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित होकर, लगन व निष्ठा से कार्य करे। लेकिन माध्यमिक स्तर पर शिक्षकों की भूमिका का शिक्षक के साथ-साथ निर्देशनकर्त्ता व सलाहकार की भी हो जाती है। इस स्तर के विद्यार्थियों को शैक्षिक व व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता होती है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता व शिक्षक प्रभावशीलता का अध्ययन किया गया है। यह जानना आवश्यक है कि जो शिक्षक व्यावसायिक रूप से प्रतिबद्ध होते हैं तो क्या उनमें शिक्षक प्रभावशीलता भी होती है। क्योंकि ये दोनों ही शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं।

संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण

संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण का अध्ययन करने के पश्चात् निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं :

व्यावसायिक प्रतिबद्धता से संबंधित जो अध्ययन किए गए उनसे यह ज्ञात होता है कि धैर्य, आत्मविश्वास, वृत्ति संतुष्टि व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा, व्यक्ति के लक्ष्य, उसके कार्य, संगठन व्यावसायिक प्रतिबद्धता को सकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं। (पुनिया 2000, आइडेला 2002, बाशिर साजिद व रैमें इस्माइल मोहम्मद 2008, वान, चिनशेंग व अन्य 2013) व्यावसायिक प्रतिबद्धता व कार्य संतुष्टि के मध्य सार्थक संबंध है। (शुक्ला 2009, खानिफर हुसैन 201) कार्य संतुष्टि का भावात्मक प्रतिबद्धता व मानक प्रतिबद्धता से धनात्मक सहसंबंध है और सतत् प्रतिबद्धता से नकारात्मक सहसंबंध है। (जैसमीन सोनिया 2010) नीतिशास्त्र संबंधी ओरिएन्टेशन व व्यावसायिक प्रतिबद्धता के बीच अर्थपूर्ण संबंध है। (उयर मेटिन व ओजर गोखन 2011) ऐसी शिक्षा प्रदान की जाए जो व्यक्ति में दक्षता, क्षमता, कौशलों, व्यावसायिक प्रतिबद्धता को बढ़ाने में सहायक हो। (साइमन्स, किलसे व अन्य 2011, कैम्पोलो एंथनी 2012) शिक्षक प्रभावशीलता से संबंधित जो अध्ययन किये गए उससे यह पता चलता है कि शिक्षक प्रभावशीलता का कार्य संतुष्टि से धनात्मक एवं सार्थक संबंध है। (सिंह 2002, नीवा 2007, कौर 2008) स्त्री शिक्षिकाएँ पुरुष शिक्षकों से अधिक प्रभावशाली है। (विजयलक्ष्मी व मिथिल 2004, अमनदीप व गुरप्रीत 2005, पडित बंशीबिहारी व सुखादे लता 2006, शुंग 2006) जो शिक्षक निरन्तर सीखते रहते हैं, अपने व्यवसाय के प्रति प्रतिबद्ध होते हैं, वे अधिक प्रभावशाली शिक्षक होते हैं। (टेलर व फ्रांसिस 2007, वेलेरी स्ट्रॉस 2010)।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि देश व विदेश दोनों जगह व्यावसायिक प्रतिबद्धता व शिक्षक प्रभावशीलता का अध्ययन विभिन्न संदर्भों की दृष्टि से हो चुका है। जैसे कि व्यावसायिक प्रतिबद्धता का मूल्य विन्यास के साथ (भल्ला, पारूल 2009, प्रोफेशनल कमिटमेंट एंड वैल्यू सिस्टम-ए स्टडी ऑफ सेकेण्डरी स्कूल टीचर्स) व्यावसायिक प्रतिबद्धता के साथ मूल्य विन्यास का कार्य संतुष्टि का अध्ययन (मैती, रूबीना 2005, ए स्टडी ऑफ प्रोफेशनल कमिटमेंट आफ सेकेण्डरी स्कूल टीचर्स इन रिलेशन टू देअर वैल्यू पैटर्नस एंड जॉब सेटिस्फैक्शन) शिक्षक प्रभावशीलता का कार्य संतुष्टि व मूल्य के साथ (मैती, रूबीना 2000, टीचर इफैक्टिवनेस, जॉब सेटिस्फैक्शन एंड वैल्यूस- ए स्टडी ऑफ सेकेण्डरी स्कूल टीचर्स ऑफ लखनऊ), विद्यालय संगठनात्मक वातावरण के साथ शिक्षक प्रभावशीलता का अध्ययन (वर्मा, ममता 2001) विद्यालयीय संगठनात्मक वातावरण तथा शिक्षक प्रभावशीलता लखनऊ शहर के माध्यमिक विद्यालयों का एक अध्ययन)।

लेकिन शोधकर्त्री को उपलब्ध स्रोतों से माध्यमिक शिक्षा स्तर पर कार्यरत शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता एवं शिक्षक प्रभावशीलता से संबंधित कोई शोध प्राप्त नहीं हुआ है इसीलिए शोधकर्त्री ने इस शीर्षक को अपने शोध अध्ययन हेतु लिया है। इसमें यह जानने का प्रयास किया गया है कि माध्यमिक शिक्षा स्तर के शिक्षकों में व्यावसायिक प्रतिबद्धता एवं शिक्षक प्रभावशीलता के बीच किस प्रकार का संबंध है तथा दोनों किस प्रकार एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व

संपूर्ण शिक्षा प्रणाली में शिक्षक एक ऐसा व्यक्ति है जो शिक्षा प्रणाली को सुचारू रूप से चलाने एवं प्रभावशाली परिणाम देने में सक्षम है। शिक्षा प्रक्रिया के अन्तर्गत शिक्षक की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वर्तमान समय में माध्यमिक शिक्षा स्तर पर कार्यरत शिक्षकों में व्यावसायिक प्रतिबद्धता व शिक्षक प्रभावशीलता के बीच क्या संबंध है। दोनों किस प्रकार एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। ये जानना अति आवश्यक है। जिन शिक्षकों में व्यावसायिक प्रतिबद्धता होती है तो क्या वे प्रभावशाली शिक्षक भी होते हैं। व्यावसायिक प्रतिबद्धता शिक्षक प्रभावशीलता को बढ़ाने में किस प्रकार सहायक है, ये जानना अति अतिआवश्यक है। ये समस्या शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर देखने को मिलती है। इसलिए इसका अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक है। शिक्षा के क्षेत्र में इस शोध का बहुत ही महत्व है। शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता व शिक्षण प्रभावशीलता पर काफी कार्य हुआ है।

प्रस्तुत समस्या का शीर्षक

प्रस्तुत अध्ययन की समस्या इस प्रकार है–

'माध्यमिक शिक्षा स्तर पर कार्यरत शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता एवं शिक्षक प्रभावशीलता का अध्ययन'।

समस्या के शीर्षक में प्रयुक्त मुख्य शब्दों की परिभाषाएँ

शोधकर्त्री द्वारा संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण करने के उपरांत मुख्य शब्दों की संक्रियात्मक परिभाषाएँ इस प्रकार हैं–

माध्यमिक शिक्षा : प्रस्तुत शोध अध्ययन में माध्यमिक से तात्पर्य कक्षा 9 से 12 तक की शिक्षा से है।

व्यावसायिक प्रतिबद्धता

प्रस्तुत शोध में शोधकर्त्री का व्यावसायिक प्रतिबद्धता से तात्पर्य अपने व्यवसाय के प्रति पूर्णत: समर्पित होकर, पूरी लगन व निष्ठा से कार्य करना। शिक्षकों की शिक्षण व्यवसाय की आन्तरिक स्वीकृति सर्वोत्तम करने की इच्छा वास्तविक देखभाल, स्वप्रेरित होकर कार्य करना एवं आधारभूत मूल्यों में निष्ठा से है।

शिक्षक प्रभावशीलता

प्रस्तुत शोध में शोधकर्त्री का शिक्षक प्रभावशीलता से तात्पर्य शिक्षकों में शिक्षण अभिक्षमता, अपने व्यवसाय के प्रति उच्च भावना, अपने विषय पर पूर्ण अधिकार होने से है। उसमें ज्ञान को सफलतापूर्वक संचारित करने की क्षमता हो तथा अपने कक्षा-कक्ष की दशाओं से निपटने की क्षमता हो।

अध्ययन के उद्देश्य

1. माध्यमिक शिक्षा स्तर पर कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता की तुलना करना।
2. माध्यमिक शिक्षा स्तर पर कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों में शिक्षक प्रभावशीलता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. माध्यमिक शिक्षा स्तर पर कार्यरत शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता एवं शिक्षक प्रभावशीलता के मध्य संबंध का अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पना

1. माध्यमिक शिक्षा स्तर पर कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. माध्यमिक शिक्षा स्तर पर कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों में शिक्षक प्रभावशीलता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
3. माध्यमिक शिक्षा स्तर पर कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता एवं शिक्षक प्रभावशीलता में कोई सार्थक संबंध नहीं है।

अध्ययन क्षेत्र की परिसीमा

1. प्रस्तुत शोध को केवल लखनऊ शहर में किया गया है।
2. प्रस्तुत शोध में लखनऊ विश्वविद्यालय परिसर के शिक्षकों को ही सम्मिलित किया गया है।
3. प्रस्तुत शोध में केवल यू.पी. बोर्ड के शिक्षकों को ही सम्मिलित किया गया है।

शोध विधि

प्रस्तुत लघु शोध समस्या की विषयवस्तु के प्रकृति वर्णनात्मक अनुसंधान की है। इस कारण इस लघु शोध हेतु विवरणात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

चर

प्रस्तुत शोध में निम्नलिखित चर हैं–

- व्यावसायिक प्रतिबद्धता
- शिक्षक प्रभावशीलता

जनसंख्या

प्रस्तुत शोध में लखनऊ जिले के यू.पी. बोर्ड के माध्यमिक शिक्षा स्तर (कक्षा 9 से 12 तक) के शिक्षकों को जनसंख्या के रूप में सम्मिलित किया गया है।

प्रतिदर्श

प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु प्रासंगिक प्रतिदर्शन विधि द्वारा 100 शिक्षकों का चयन प्रतिदर्श के रूप में किया गया है।

प्रतिदर्श चयन प्रतिक्रिया: प्रतिदर्श के चयन की प्रक्रिया दो स्तरों में की गयी।

1. **संस्था का चयन:** शिक्षा निदेशक के कार्यालय से शहर के माध्यमिक विद्यालयों की सूची प्राप्त की गयी। इस सूची से यू.पी. बोर्ड के विद्यालय को पृथक कर

लिया गया। इस सूची से यू.पी. बोर्ड के विद्यालयों का चयन लॉटरी विधि द्वारा यादृच्छिक रूप से किया गया।

2. **शिक्षकों का चयन:** संस्था के चयन के पश्चात् शिक्षकों का चयन किया गया। चयनित विद्यालयों में से शिक्षकों का चयन प्रासंगिक प्रतिदर्शन विधि द्वारा किया गया जिसमें 48 महिला शिक्षक व 52 पुरुष शिक्षकों को लिया गया।

उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन में माध्यमिक शिक्षा स्तर पर कार्यरत शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता एवं शिक्षक प्रभावशीलता का अध्ययन करने के लिए निम्नलिखित उपकरण प्रयुक्त किये गए–

- शिक्षक प्रभावशीलता मापनी– स्वनिर्मित

मापनी का विवरण

इस मापनी में 60 एकांश हैं जिसमें सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही प्रकार के एकांश हैं। प्रत्येक एकांश हेतु पांच विकल्प 'पूर्णतया सहमत' से 'पूर्णतया असहमत' के प्रसार के रूप में व्यवस्थित किये गए हैं। यह परीक्षण हिन्दी में है। इसमें विषयी को जो विकल्प सबसे सही लगता है उस पर सही (✓) का निशान लगाना है। इसमें कोई भी प्रतिक्रिया सही अथवा गलत नहीं है।

संबंधित क्षेत्र

शिक्षक प्रभावशीलता से संबंधित पांच क्षेत्रों का निर्धारण किया गया। शिक्षक प्रभावशीलता से संबंधित पांच क्षेत्र निम्नलिखित हैं–

1. विषय ज्ञान
2. सम्प्रेषण कौशल
3. व्यक्तिगत गुण
4. विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करना
5. शिक्षण अभिवृत्ति

- टीचर्स प्रोफेशनल कमिटमेंट स्केल (TPCS)- रूबीना मैती द्वारा निर्मित

विधि

आंकड़ों का संकलन

सर्वप्रथम लखनऊ विश्वविद्यालय के शिक्षा संकाय से अनुमति-पत्र प्राप्त किया गया। इसके पश्चात् शोधकर्त्री चयनित की गई संस्थाओं में प्रधानाचार्य/प्रधानाचार्या के सहयोग

से गयी। शोधकर्त्री ने संस्थान में जाकर शिक्षकों से मिलकर उनके साथ सौहार्द्रपूर्ण संबंध स्थापित किये। शिक्षकों के अध्ययन के उद्देश्य के बारे में स्पष्टता से बताया गया तथा उन्हें परीक्षण से संबंधित निर्देश दिये गए। शिक्षकों द्वारा प्रश्नावली को भरने के पश्चात् उनका संकलन किया गया ।

सांख्यिकीय विधियां

प्रस्तुत शोध में सांख्यिकीय विधियों के अंतर्गत निर्धारित उद्देश्यों के संदर्भ में मध्यमान, मानक विचलन, टी-मूल्य तथा व्यावसायिक प्रतिबद्धता एवं शिक्षक प्रभावशीलता के मध्य संबंध का अध्ययन करने के लिये गुणनफल आघूर्ण सहसंबंध का प्रयोग किया गया।

प्रदत्तों का विश्लेषण, परिणाम एवं व्याख्या

प्रदत्तों का संकलन करने के पश्चात् प्राप्त प्रदत्तों के उद्देश्यानुसार विश्लेषण एवं व्याख्या की गई। उद्देश्यों के आधार पर निम्नलिखित परिणाम निकलकर आये हैं :

तालिका-1

माध्यमिक शिक्षा स्तर पर कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता की तुलना

	शिक्षक	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (σ)	टी-मूल्य (t-value	सार्थकता का स्तर
व्यावसायिक प्रतिबद्धता	पुरुष	52	202.94	20.29	1.32	P>0.05 सार्थक अन्तर नहीं है
	महिला	48	207.65	15.28		

तालिका-1 के निरीक्षण से ज्ञात होता है कि पुरुष एवं महिला शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता का मध्यमान क्रमश: 202.94 व 207.65 और मानक विचलन क्रमश: 20.29 व 15.20 है। इन दोनों में व्यावसायिक प्रतिबद्धता का टी-मूल्य 1.32 है जो 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है। अत: यह शून्य परिकल्पना कि 'माध्यमिक शिक्षा स्तर पर कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों का व्यावसायिक प्रतिबद्धता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। अत: यह कहा जा सकता है कि पुरुष एवं महिला शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता में कोई अन्तर नहीं है और पुरुष एवं महिला शिक्षक समान ढंग से व्यावसायिक रूप से प्रतिबद्ध हैं।

व्यावसायिक प्रतिबद्धता से संबंधित क्षेत्र

I. अधिगमकर्त्ता के प्रति

तालिका-2

क्र. सं.	शिक्षक	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (σ)	टी-मूल्य (t-value	सार्थकता का स्तर
1.	पुरुष	52	32.42	3.38	0.201	P>0.05 सार्थक अन्तर नहीं है
2.	महिला	48	32.60	3.56		

तालिका-2 के निरीक्षण से यह ज्ञात होता है कि पुरुष एवं महिला शिक्षकों में व्यावसायिक प्रतिबद्धता से संबंधित क्षेत्र 'अधिगमकर्त्ता के प्रति' का मध्यमान क्रमशः 32.42 व 32. 60 और मानक विचलन क्रमशः 3.38 व 3.56 है। टी-मूल्य 0.201 है जो 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है। अतः यह कहा जा सकता है कि पुरुष एवं महिला शिक्षकों में इस क्षेत्र संबंधी प्रतिबद्धता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

II. समाज के प्रति

तालिका-3

क्र. सं.	शिक्षक	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (σ)	टी-मूल्य (t-value	सार्थकता का स्तर
1.	पुरुष	52	48.33	5.99	0.059	P>0.05 सार्थक अन्तर नहीं है
2.	महिला	48	48.73	5.39		

तालिका-3 के निरीक्षण से यह ज्ञात होता है कि पुरुष एवं महिला शिक्षकों में व्यावसायिक प्रतिबद्धता से संबंधित क्षेत्र 'समाज के प्रति' का मध्यमान क्रमशः 48.33 व 48.73 और मानक विचलन क्रमशः 5.99 व 5.29 है। टी-मूल्य 0.059 है जो 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है। अतः यह कहा जा सकता है कि पुरुष एवं महिला शिक्षकों में इस क्षेत्र संबंधी प्रतिबद्धता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

III. व्यवसाय के प्रति

तालिका-4

क्र. सं.	शिक्षक	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (σ)	टी-मूल्य (t-value	सार्थकता का स्तर
1.	पुरुष	52	39.98	4.90	0.0129	P>0.05
2.	महिला	48	39.97	2.53		सार्थक अन्तर नहीं है

तालिका-4 के निरीक्षण से यह ज्ञात होता है कि पुरुष एवं महिला शिक्षकों में व्यावसायिक प्रतिबद्धता से संबंधित क्षेत्र 'व्यवसाय के प्रति' का मध्यमान क्रमश: 39.98 व 39.97 और मानक विचलन क्रमश: 4.90 व 2.53 है। टी-मूल्य 0.0129 है जो 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है। अत: यह कहा जा सकता है कि पुरुष एवं महिला शिक्षकों में इस क्षेत्र संबंधी प्रतिबद्धता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

IV. व्यावसायिक कार्यकलापों में उत्कृष्टता प्राप्त करने के प्रति

तालिका-5

क्र. सं.	शिक्षक	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (σ)	टी-मूल्य (t-value	सार्थकता का स्तर
1.	पुरुष	52	32.90	4.53	1.926	P>0.05
2.	महिला	48	34.48	3.58		सार्थक अन्तर नहीं है

तालिका-5 के निरीक्षण से यह ज्ञात होता है कि पुरुष एवं महिला शिक्षकों में व्यावसायिक प्रतिबद्धता से संबंधित क्षेत्र 'व्यावसायिक उत्कृष्टता के प्रति' का मध्यमान क्रमश: 32.90 व 34.48 और मानक विचलन क्रमश: 4.53 व 3.68 है। टी-मूल्य 1.926 है जो 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है। हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि पुरुष एवं महिला शिक्षकों में इस क्षेत्र संबंधी प्रतिबद्धता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

V. बुनियादी मूल्य

तालिका-6

क्र. सं.	शिक्षक	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (σ)	टी-मूल्य (t-value	सार्थकता का स्तर
1.	पुरुष	52	48.88	6.047	1.506	P>0.05 सार्थक अन्तर नहीं है
2.	महिला	48	50.56	5.11		

तालिका-6 के निरीक्षण से यह ज्ञात होता है कि पुरुष एवं महिला शिक्षकों में व्यावसायिक प्रतिबद्धता से संबंधित क्षेत्र 'बुनियादी मूल्य' का मध्यमान क्रमश: 48.88 व 50.06 और मानक विचलन क्रमश: 6.047 व 5.11 है। टी-मूल्य 1.506 है जो 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है। अत: यह कहा जा सकता है कि पुरुष एवं महिला शिक्षकों में इस क्षेत्र संबंधी प्रतिबद्धता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका-7

माध्यमिक शिक्षा स्तर पर कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों में शिक्षक प्रभावशीलता की तुलना

	शिक्षक	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (σ)	टी-मूल्य (t-value	सार्थकता का स्तर
व्यावसायिक प्रतिबद्धता	पुरुष	52	237.35	33.5	0.725	P>0.05 सार्थक अन्तर नहीं है
	महिला	48	241.35	20.6		

तालिका-7 के निरीक्षण से यह ज्ञात होता है कि पुरुष एवं महिला शिक्षकों में शिक्षक प्रभावशीलता का मध्यमान क्रमश: 237.5 व 241.35 और मानक विचलन क्रमश: 33.5 व 20.6 है। इन दोनों की शिक्षक प्रभावशीलता के अन्तर का टी-मूल्य 0.725 है जो 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है। अत: यह शून्य परिकल्पना कि 'माध्यमिक शिक्षा स्तर पर कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की शिक्षक प्रभावशीलता में कोई सार्थक अंतर नहीं है, स्वीकृत की जाती है तथा यह कहा जा सकता कि पुरुष एवं महिला शिक्षकों की

शिक्षक प्रभावशीलता में कोई अन्तर नहीं है तथा पुरुष एवं महिला शिक्षकों में समान रूप से शिक्षक प्रभावशीलता है।

तालिका-8

माध्यमिक शिक्षा स्तर पर कार्यरत शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता एवं शिक्षक प्रभावशीलता के मध्य संबंध की तुलना

क्र. सं.	समूह	शिक्षकों की संख्या (N)	सहसंबंध
1.	व्यावसायिक प्रतिबद्धता	100	0.181 (अत्यंत निम्न स्तरीय धनात्मक सहसंबंध)
2.	शिक्षक प्रभावशीलता		

तालिका-8 के निरीक्षण से यह ज्ञात होता है कि शिक्षकों में व्यावसायिक प्रतिबद्धता व शिक्षक प्रभावशीलता का सहसंबंध 0.181 है जो कि अत्यंत निम्न स्तरीय धनात्मक सहसंबंध है। इससे पता चलता है कि व्यावसायिक प्रतिबद्धता व शिक्षक प्रभावशीलता के बीच अत्यन्त निम्न स्तर का धनात्मक सहसंबंध है। अतः शून्य परिकल्पना कि 'माध्यमिक शिक्षा स्तर पर कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता एवं शिक्षक प्रभावशीलता में कोई सार्थक संबंध नहीं है, अस्वीकृत की जाती है। इन दोनों ही चरों में अत्यन्त निम्न स्तरीय धनात्मक सहसंबंध है।

परिणामों की व्याख्या

माध्यमिक शिक्षा स्तर पर कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता की तुलना के अंतर्गत पुरुष एवं महिला शिक्षक समान रूप से अपने व्यवसाय के प्रति प्रतिबद्ध हैं अर्थात् उनमें समान रूप से व्यावसायिक प्रतिबद्धता है। इससे यह ज्ञात होता है कि लिंग का प्रभाव व्यावसायिक प्रतिबद्धता पर नहीं पड़ा। इसका कारण हो सकता है कि वर्तमान समय में शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तन आया है, शिक्षा व विद्यार्थी के प्रति उत्तरदायित्व, शिक्षण अभिवृत्ति, समाज व व्यवसाय के प्रति उत्तरदायित्व की भावना महिला एवं पुरुष शिक्षकों में समान रूप से है।

माध्यमिक शिक्षा स्तर पर कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों में शिक्षक प्रभावशीलता के तुलनात्मक अध्ययन के अन्तर्गत पुरुष एवं महिला शिक्षकों में समान रूप से शिक्षक प्रभावशीलता है। उनमें कोई सार्थक अन्तर नहीं है। इससे यह ज्ञात होता है कि शिक्षक

प्रभावशीलता के अन्तर्गत जो क्षेत्र लिये गए थे जैसे– विषयवस्तु ज्ञान, सम्प्रेषण कौशल, व्यक्तिगत गुण, विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करना व शिक्षण अभिवृत्ति के संदर्भ में महिला एवं पुरुष शिक्षक समान हैं। दोनों के दृष्टिकोण में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। इसका कारण शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में परिवर्तित दशाएँ, कार्यक्षेत्र, प्रेरक कारकों व अभिवृत्ति आदि हो सकता है।

माध्यमिक शिक्षा स्तर पर कार्यरत शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता एवं शिक्षक प्रभावशीलता के मध्य अत्यन्त निम्न स्तरीय धनात्मक सहसंबंध है। अर्थात् दोनों एक–दूसरे को बहुत कम प्रभावित करते हैं। जो शिक्षक व्यावसायिक रूप से प्रतिबद्ध है, तो यह आवश्यक नहीं कि वह प्रभावशाली शिक्षक भी हो। इसका कारण हो सकता कि वर्तमान में विभिन्न संदर्भों में दृष्टिकोणों का परिवर्तित होना, आवश्यकताएँ, नियंत्रक–तत्वों, अभिक्षमता, रुचियों, उत्तरदायित्वों, वेतन व कार्यदशाओं का होना हो सकता है।

शैक्षिक निहितार्थ

- प्राप्त परिणामों से ज्ञात होता है कि व्यावसायिक प्रतिबद्धता के अन्तर्गत कुछ शिक्षकों में अधिक व्यावसायिक प्रतिबद्धता है तथा कुछ शिक्षकों में कम। इस प्रकार शिक्षकों में व्यावसायिक प्रतिबद्धता विकसित करने की आवश्यकता है। आकर्षक कार्य दशाएँ, वृत्ति संतुष्टि प्रदान करके उनकी व्यावसायिक संलग्नता एवं निष्ठा में वृद्धि की जा सकती है।
- व्यावसायिक प्रतिबद्धता को बढ़ाने में अभिप्रेरणा की महत्वपूर्ण भूमिका है। शिक्षकों को व्यावसायिक रूप से प्रतिबद्ध बनाने के लिए अभिप्रेरित किया जाए क्योंकि प्रत्येक शिक्षक की आवश्यकताएँ एवं प्राथमिकताएँ भिन्न–भिन्न हैं। अतः उन्हें उनके अनुरूप प्रेरित करने के लिए व्यावहारिक उपाय किया जाए।
- शिक्षकों को अपने व्यवसाय के प्रति प्रतिबद्ध बनाने के लिए उत्तरदेयता की मांग भी होना आवश्यक है। आवश्यकता है कि प्रबंध तंत्र एवं प्रशासन उनसे सतत् उत्तरदेयता की मांग करे जिससे वे अपने व्यवसाय के प्रति तत्पर एवं संलग्न रहें।
- शिक्षक प्रभावशीलता को बढ़ाने के लिए प्रयत्न किया जा सकता है।
- समाज द्वारा शिक्षकों के कार्यों का मूल्यांकन, शिक्षकों को उनके व्यवसाय के प्रति सचेत एवं सावधान बनाए रखने में सहायक हो सकता है।

संदर्भ

एडवर्ड्स, ए.एल. (1989): *टेक्निक्स ऑफ एटीट्यूड स्केल कन्स्ट्रक्शन,* बम्बई, वेकिल्स, फीफर एंड साइमंस प्रा. लि.

गैरेट एच.ई. (1981) : *स्टेटिस्टिक्स इन साइकोलॉजी एंड एजूकेशन,* बम्बई, वेकिल्स, फीफर्स साइमन्स लि.

कपिल, एच.के. (2012) : *अनुसंधान विधियाँ,* आगरा, एच.पी. भार्गव बुक हाउस

मंगला, शीला (2001) : *टीचर एजूकेशन, ट्रेन्डस् एंड स्ट्रेटिजीस,* नई दिल्ली, राधा पब्लिकेशन्स

मैती, रूबीना (2005) : *ए स्टडी ऑफ प्रोफेशनल कमिटमेंट ऑफ सेकेण्डरी स्कूल टीचर्स इन रिलेशन टू देअर वैल्यू पैटनर्स् एंड जॉब सेटिस्फैक्शन,* अप्रकाशित, पी–एच.डी. लखनऊ विश्वविद्यालय

राय, पारसनाथ (2008) : *अनुसंधान परिचय,* आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन।

सिंह, अरूण कुमार (2010) : *मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ,* दिल्ली : नरेन्द्र प्रकाश जैन, मोती लाल बनारसी दास प्रकाशन

http:// www.eric.ed.gov/ERIC web portal/Search/ Simple Search.isp

http:// www.educationnext.org/evaluating-teacher effectiveness. (5.10.13)

http:// shodhganga.Inflibnet.ac.in/ bitstream/ 106031 (5.10.13).

http:// repository. Christuniversity.in/1779 (5.10.13)

http:// www.thedialogual.org/ publlications filer/ wp4

http:// www.margzanocenter.com/tiles/ Paul Mielke, (6.10.13)

http:// www.spzaz.org/rmhs/staff/jcgowdy/ instruc (6.10.13)

http:// www.tandfonline.com/ doi/ full/10.108010)

http:// www.academic.edu/1462058/ Teacher Commitment (7.10.13)

http:// www.academicjournals.org/ ajbm/ pdf. (7.10.13)

http:// www.instablogs.com/teaching competency (7.10.13)

http:// www.vikalpa.com/ pay/ articles/ 2009/ vol-34, 1-31, (7.10.13).

ec.eurapa.eu/education/ school-education/ doc/talis/ chapter 2-en.pdf. (3.10.13)

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 3, दिसंबर 2013

शोध टिप्पणी/संवाद

गृह पर्यावरण का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का प्रभाव

राजकुमारी कालरा* एवं **प्रीति मनानी****

सारांश

बालक का आचरण, बोलचाल और रहन-सहन अपने कुटुम्ब की संस्कृति के अनुरूप होता है। अत: निर्विवाद कहा जा सकता है कि बालक का व्यक्तित्व परिवार की संस्कृति से प्रभावित होता है जिसे लेकर वह विद्यालय जाता है। प्रस्तुत शोध में यह अध्ययन किया गया है कि गृह पर्यावरण का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर क्या प्रभाव पड़ता है। शोध के संदर्भ में संबंधित प्रदत्तों के संकलन हेतु प्रो. बीना शाह (1990) द्वारा निर्मित गृह पर्यावरण सूची का प्रयोग किया गया है। शोध में प्रतिदर्श चयन के लिए यादृच्छिक विधि का अनुप्रयोग किया गया है। परिणाम में पाया गया है कि प्रतिकूलित गृह पर्यावरण में रहने वाले विद्यार्थियों की अपेक्षा अनुकूलित गृह पर्यावरण में रहने वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का स्तर उच्च होता है।

प्रस्तावना

गृह बालक की प्रथम शिक्षा संस्था है। इससे बच्चे के विकास की नींव रखी जाती है। गृह ही अपने बालकों के लिये विद्यालय शिक्षा की व्यवस्था करते हैं। गृह शिक्षा का प्रमुख औपचारिक व अनौपचारिक अभिकरण है। माताएँ बालक की आदर्श अध्यापिकाएँ होती हैं तथा परिवार में दी जाने वाली शिक्षा बहुत प्रभावशाली तथा स्वाभाविक होती है। माता के बाद दूसरा महत्वपूर्ण स्थान पिता का होता है। दोनों का बालक के व्यक्तित्व के निर्माण पर प्रभाव पड़ता है। इस काल में बालक पर माता-पिता के आचरण और

---

*एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट, (डीम्ड यूनिवर्सिटी) आगरा।
**शोधकर्त्ता, शिक्षा संकाय, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट, (डीम्ड यूनिवर्सिटी) आगरा।

व्यवहार का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। इन दोनों के अतिरिक्त दादा-दादी, बड़े भाई-बहन तथा संबंधियों के व्यवहार का भी प्रभाव पड़ता है। इन लोगों के प्रभाव के अतिरिक्त बालक अपने परिवार की संस्कृति से प्रभावित होता है और जब वह विद्यालय जाता है तो उसके व्यक्तित्व में पारिवारिक संस्कृति का स्पष्ट प्रभाव होता है। बालक के आचरण, बोलचाल और रहन-सहन अपने कुटुम्ब की संस्कृति के अनुरूप होती है। अत: निर्विवाद कहा जा सकता है कि इस अवस्था से बालक का स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं होता, वरन् परिवार की संस्कृति से प्रभावित होता है जिसे लेकर वह विद्यालय जाता है।

अंग्रेजी में कहावत है कि बालक मनुष्य का पिता है। यह कहावत अक्षरश: ठीक है क्योंकि बाल्यकाल में ही समस्त गुण व दोष व्यक्ति में बो दिए जाते हैं और उन्हीं के अनुसार उसके चरित्र में अच्छाइयों तथा बुराइयों का आविर्भाव होता है। अत: बाल्यकाल की शिक्षा परिवार में ही होती है यह शिक्षा रहन-सहन, बोल-चाल, कपड़े पहनना, भोजन करना शारीरिक स्वच्छता आदि से संबंधित होती है। इसके अतिरिक्त उसकी प्रारम्भिक बौद्धिक शिक्षा का प्रारम्भ भी परिवार में ही होता है, क्योंकि भाषा-ज्ञान अर्थात् बोलना वह परिवार में ही सीखता है। इस प्रकार अपनी ज्ञानेन्द्रियों का उपयोग भी वह घर पर ही सीखता है। ये सब शिक्षा विद्यालय जाने से पूर्व ही यह परिवार में ग्रहण करता है और इनके कुशल उपयोग पर बालक का मानसिक विकास आधारित होता है। उपरोक्त शिक्षाओं के अतिरिक्त अन्य शिक्षाएँ उदाहरणार्थ आलोचना, तर्क, एकाग्रता आदि वह परिवार में ही प्राप्त करता है। ये विविध शिक्षाएँ वे आधार हैं जिन पर उसके व्यक्तित्व का विकास होता है। अत: हम कह सकते हैं कि बालकों की प्रथम व शाश्वत पाठशाला गृह है। यहीं उनकी शारीरिक, मानसिक संवेगात्मक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक व अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। शान्ति टी.आर. (2000) ने शोधाध्ययनोपरांत पाया कि माता-पिता एवं बालकों के सौहार्दपूर्ण संबंध विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव डालते हैं।

यावेन्द्र शर्मा (1992) के अध्ययन में पाया कि विद्यार्थियों के गृह पर्यावरण के मूल्यों एवं व्यक्तित्व विकास में धनात्मक सह-संबंध है। श्रीवास्तव सुषमा एवं श्रीवास्तव ज्योति (2002) ने शोधाध्ययनोपरांत पाया कि किशोरों की शैक्षिक रुचि पर पारिवारिक वातावरण का प्रभाव पड़ता है। ज्ञानानी (2003) ने शोधाध्ययनोपरांत पाया कि छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि पर माता-पिता के प्रोत्साहन का छात्रों की अपेक्षा अधिक प्रभाव पड़ता है। वर्तमान में गृह पर्यावरण का शैक्षिक उपलब्धि पर क्या प्रभाव पड़ता है, इस समस्या का समाधान प्रस्तुत शोध अध्ययन में करने का लघु प्रयास किया गया है।

समस्या का कथन

गृह पर्यावरण का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन।

भारत में प्रयुक्त शब्दों की व्याख्या

गृह पर्यावरण

क्लेयर (1966) के अनुसार गृह पर्यावरण से हम संबंधों की वह व्यवस्था समझते हैं, जो माता-पिता और उसके संतानों के बीच पायी जाती है।

कार्यात्मक परिभाषा

गृह पर्यावरण से तात्पर्य अभिभावक और बच्चे के बीच अन्तर्वैयक्तिक संबंध हैं जिनके अन्तर्गत परिवार की शारीरिक, मानसिक व संवेगात्मक क्रियाएं समाहित रहती हैं।

कार्यात्मक परिभाषा

प्रस्तुत अध्ययन में शैक्षिक उपलब्धि का आशय उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद के दसवीं कक्षा में वार्षिक परीक्षा में विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त अंकों का समग्र योग है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. छात्राओं के गृह पर्यावरण का अध्ययन।
2. छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन करना।
3. गृह पर्यावरण के संदर्भ में छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना

अध्ययन के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए शून्य उप-कल्पना का अनुसरण पर परीक्षण किया गया है। अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में परीक्षण हेतु परिकल्पना है– गृह पर्यावरण का छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

अध्ययन का परिसीमांकन

सीमित समय व उपलब्ध संसाधन को दृष्टिगत रखते हुए अध्ययन को निम्नवत् परिसीमित किया गया है:

1. यह अध्ययन आगरा शहर में स्थित उन कन्या विद्यालयों तक ही सीमित रखा गया है जो उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा बोर्ड से मान्यता प्राप्त हों।
2. अध्ययन में केवल एकांकी परिवार से संबद्ध छात्राओं को सम्मिलित किया गया है।

अध्ययन के चर

स्वतंत्र चर – गृह पर्यावरण

आश्रित चर – शैक्षिक उपलब्धि

शोध प्रक्रिया एवं प्रारूप

शोध विधि

प्रस्तुत शोध में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

न्यादर्श का चयन

प्रस्तुत शोध कार्य हेतु सर्वप्रथम आगरा शहर के उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद द्वारा संचालित महिला उच्चतर माध्यमिक विद्यालय को ही चयनित किया गया है। विद्यालयों की सूची में तीन विद्यालयों को ही सोद्देश्य विधि द्वारा चयनित किया गया है तथा अन्तिम प्रतिदर्श चयन के निमित्त यादृच्छिक विधि का अनुप्रयोग किया गया है।

उपकरण

शोध के संदर्भ में संबंधित प्रदत्तों के संकलन हेतु प्रो. बीना शाह (1990) द्वारा निर्मित गृह पर्यावरण सूची का प्रयोग किया गया है।

विश्लेषण का विवेचन

छात्राओं की गृह पर्यावरण स्थिति का अध्ययन करना

इस तथ्य के अध्ययन हेतु छात्राओं के गृह पर्यावरण का मध्यमान व मानक विचलन ज्ञात किया जिसे तालिका–1 में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका–1

गृह पर्यावरण सूची प्राप्तांक मध्यमान के आधार पर छात्राओं के मध्यमान

गृह पर्यावरण	छात्रों की संख्या	मध्यमान	मानक विचलन
अनूकूलित गृह पर्यावरण	64	130.29	80.08
प्रतिकूलित गृह पर्यावरण	56	108.82	77.69

तालिका–1 का गहनतापूर्वक अवलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि छात्राओं के अनूकूलित गृह पर्यावरण का मध्यमान प्रतिकूलित गृह पर्यावरण के मध्यमान की अपेक्षा अधिक है।

मानक विचलन से भी यह स्पष्ट होता है कि प्रतिकूलित गृह पर्यावरण की अपेक्षा अनुकूलित गृह पर्यावरण से अधिक विचलनशीलता पायी गयी है।

छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन

इस तथ्य के अध्ययन हेतु अनुकूलित तथा प्रतिकूलित गृह पर्यावरण की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि को उच्च, मध्यम एवं निम्न श्रेणी में विभक्त किया गया एवं छात्राओं की संख्या के आधार पर प्रत्येक श्रेणी में उपस्थित छात्राओं की प्रतिशत संख्या ज्ञात किया जिसे तालिका–2 में प्रस्तुत किया गया है–

तालिका–2

अनुकूलित एवं प्रतिकूलित गृह पर्यावरण की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि का प्रतिशत

गृह पर्यावरण	उच्च शैक्षिक		मध्यम शैक्षिक उपलब्धि		निम्न शैक्षिक उपलब्धि	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
अनूकूलित	20	31.23	35	56.5	9	14.062
प्रतिकूलित	12	19.65	32	55.36	12	25

तालिका–2 का गहनतापूर्वक अवलोकन करने पर विदित होता है कि प्रतिकूलित गृह पर्यावरण की अपेक्षा अनुकूलित गृह पर्यावरण में उच्च शैक्षिक उपलब्धि प्राप्त करने वाली छात्राओं की संख्या अधिक है। तथा प्रतिदर्श वितरण में सबसे अधिक छात्राओं की संख्या मध्यम शैक्षिक उपलब्धि प्राप्त करने वाली है अनुकूलित गृह पर्यावरण में प्रतिकूलित गृह पर्यावरण की अपेक्षा अधिक मध्यम शैक्षिक उपलब्धि प्राप्त करने वाले विद्यार्थी हैं लेकिन छात्राओं की प्रतिशत संख्या के आधार पर अनुकूलित गृह पर्यावरण की अपेक्षा प्रतिकूल गृह पर्यावरण का थोड़ा ही अधिक है। इसी प्रकार निम्न शैक्षिक उपलब्धि प्राप्त करने वाली प्रतिकूलित गृह पर्यावरण की छात्राओं का प्रतिशत अधिक है।

गृह पर्यावरण के संदर्भ में छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन

इस तथ्य के अध्ययन हेतु अनूकूलित तथा प्रतिकूलित गृह पर्यावरण की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि के प्राप्तांकों के मध्यमान, मानक विचलन तथा टी मूल्य ज्ञात किया।

तालिका-3

गृह पर्यावरण के संदर्भ में छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि मानक विचलन तथा टी मान

गृह पर्यावरण	कुल संख्या	शैक्षिक उपलब्धि		टी मान	सार्थकता स्तर
		मध्यमान	मानक विचलन		
अनुकूलित	64	354	56.44	2.14	<.05
प्रतिकूलित	56	308	58.46		

तालिका-3 के गहनतापूर्वक अवलोकन से स्पष्ट होता है कि अनुकूलित गृह पर्यावरण की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि के प्राप्तांकों का मध्यमान प्रतिकूलित गृह पर्यावरण के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के प्राप्तांकों के मध्यमान से अधिक है। इसका अनुमानित कारण हो सकता है कि अनुकूलित गृह पर्यावरण की छात्राओं को अधिक स्वतंत्रता का पोषण मिलता है।

तालिका के पुनरावलोकन से स्पष्ट होता है कि अनुकूलित गृह पर्यावरण की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि तथा प्रतिकूलित गृह पर्यावरण की शैक्षिक उपलब्धि का टी-मान सार्थकता स्तर पर सार्थक है। अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा कसता है कि अनुकूलित गृह पर्यावरण की छात्राओं के माता-पिता का व्यवहार छात्राओं के प्रति अधिक आत्मीय, संवेदनशील, प्रोत्साही, प्रेरणादायक, स्वीकारात्मक है जिसका उसकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव दृष्टिगोचर हो रहा है। श्रीवास्तव सुषमा एवं श्रीवास्तव ज्योति (2002) ने बताया है कि किशोरों की शैक्षिक रुचि पर पारिवारिक वातावरण का प्रभाव पड़ता है।

उपरोक्त विश्लेषण तथा विवेचन से स्पष्ट होता है कि प्रतिकूलित गृह पर्यावरण में रहने वाली छात्राओं की अपेक्षा अनुकूलित गृह पर्यावरण में रहने वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का स्तर उच्च होता है क्योंकि अनुकूलित गृह पर्यावरण में छात्राओं को शिक्षा के क्षेत्र में समय-समय पर प्रोत्साहन, शैक्षिक सुविधाएँ, मार्ग-दर्शन, माता-पिता द्वारा प्रदत्त अनुभव आदि उच्च शैक्षिक उपलब्धि प्राप्त करने के लिये प्रेरित करते हैं।

संदर्भ

शर्मा, यावेन्द्र (1999), *विद्यार्थियों के गृह पर्यावरण के मूल्यों तथा व्यक्तित्व विकास पर प्रभाव का अध्ययन,* एम.एड. डिजर्टेशन आर.बी.एस., आगरा

कपिल एच.के. (1981), *अनुसंधान विधियाँ,* विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा मैक्ग्यूगन, एफ.जे. (1969)ए सांख्यिकीय के मूल तत्व विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

मैक्ग्यून, एफ.जे. (1969), *एक्सपेरिमेंटल साइकॉलोजी,* प्रिन्टिस हॉल ऑफ इण्डिया प्रा.लि., नई दिल्ली

पाठक, पी.के. (2003), *अर्ली चाइल्डहुड एजुकेशन,* रजत पब्लिकेशन, नई दिल्ली

राय, पारसनाथ, (1988) *अनुसंधान परिचय,* लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा

रेड्डी, नारायण, (2003), *मैनेजिंग चाइल्ड प्रोब्लम सपोर्ट स्ट्रेटटीज इंवेन्ट्रिज,* कनिष्का पब्लिकेशन डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली

ज्ञानानी (2003), *ए स्टडी ऑफ पेरेंटल इंकरेजमेंट एकेडमिक एंड इमोशनल स्टेबिल्टी ऑफ स्कूल गोइंग क्लासेस,* एस.एस. श्रीवास्तव (सम्पादक) में, भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, लखनऊ: इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ एजूकेशनल रिसर्च, भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, लखनऊ: इंस्टीट्यूट ऑफ एजूकेशनल रिसर्च वर्ष–22 अंक–2ए 2003

श्रीवास्तव, ज्योति एवं सुषमा (2002), *पारिवारिक वातावरण का किशोरों की शैक्षिक रुचि एवं आकांक्षा स्तर पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन,* एस.एस. श्रीवास्तव (सम्पादक), भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, लखनऊ, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ एजूकेशनल रिसर्च, वर्ष–21, अंक–2.4

पीकोक एंव एलिजाबेथ वी.जी. (2000), *द इम्पेक्ट होम एजूकेशनल इसर्पिट एंड टीचर इन्स्ट्रक्शनल प्रैक्टिसिस ऑन सेकण्डरी स्कूल स्टूडेन्ट्स एकेडमिक एचीवमेंट एंड परसेप्शन्स ऑफ कंटेंट,* मिनीगुलेन्स, डिजर्टेशन, एब्सट्रेक्ट इन्टरनेशनल, 61, अंक–4, पृ. 1287

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 3, दिसंबर 2013

शोध टिप्पणी/संवाद

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्र-छात्राओं के स्वप्रत्यय का अध्ययन

विवेक गुप्ता* एवं **संदीप कुमार श्रीवास****

किशोरावस्था में विद्यार्थियों की शारीरिक व मानसिक स्थितियों में ढेरों परिवर्तन होते हैं यही समय उनकी माध्यमिक स्तर की शिक्षा की प्राप्ति का भी होता है। वे एक नई मनोवृत्ति, स्वप्रत्यय का विकास करने लगते हैं। उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययन करने वाले विद्यार्थी के आत्म प्रत्यय के कुछ नवीनताएं तथा विभिन्नताएं प्रतीत होती हैं। शोध परिणामों के द्वारा पूर्व में सिद्ध हो चुका है किसी भी व्यक्ति के समायोजन में सकारात्मक उच्च आत्म प्रत्यय महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। इसी तथ्य को दृष्टिगत रखकर प्रस्तुत अध्ययन के द्वारा विषयवार छात्र-छात्राओं के स्वप्रत्यय को जानने का प्रयास किया गया।

प्रस्तावना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा सामाजिक जीवन में उसकी उपलब्धि महत्वपूर्ण होती है। वह समाज का निर्माता एवं संरक्षक होता है। यही कारण है कि मनुष्य के जीवन में शिक्षा एक पौष्टिक पदार्थ है जिसके द्वारा उसे शक्ति और बल प्राप्त होता है तथा उसमें एक शिक्षक महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करता है। मनुष्य और समाज दोनों शिक्षा के माध्यम से विकसित तथा पल्लवित होते हैं तथा शिक्षा के कारण ही नागरिक अपने कर्तव्य को समझते हैं और अपना उत्तरदायित्व पूरा करते हैं।

माध्यमिक शिक्षा वह शिक्षा है जो विश्वविद्यालय शिक्षा से पहले और प्राथमिक शिक्षा के बाद में दी जाती है। माध्यमिक स्तर पर शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थी सामान्यत: किशोरावस्था के विद्यार्थी होते हैं जिसे तूफान तथा झंझावत की अवस्था कहा गया है। इस अवस्था में बालक एवं बालिकाओं की शारीरिक तथा मानसिक स्थिति में

* शोधार्थी, शिक्षा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
** शोधार्थी, शिक्षा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

ढेरों परिवर्तन होते हैं। वे समूह में रहना पसन्द करते हैं तथा वे स्वंय तथा दूसरों के बारे में कुछ धारणाएं भी बनाने लगते हैं जैसा कि पियाजे (1969) ने कहा है तीव्र मानसिक विकास होने के कारण बालक वयस्क के समाज में अपने आपको संगठित मानता है। वह एक नई मनोवृत्ति, संप्रत्यय तथा परिपक्वता का विकास करता है। इस दिशा में सकारात्मक विकास के लिए शिक्षकों की अहम् भूमिका होती है। शिक्षक वर्ग उन्हें उचित दिशा-निर्देश प्रदान कर एक परिपक्व सोच तथा मनोवृत्ति कायम करने में मदद करते हैं। जो किशोरों को एक स्वस्थ समायोजन में काफी सहायक सिद्ध होते हैं।

चड्ढा (2005) ने माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष और महिला शिक्षकों के आत्मप्रत्यय एवं सांवेगिक समायोजन से संबंधित तुलनात्मक अध्ययन किया। अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित थे– पुरुष और महिला शिक्षकों के आत्मप्रत्यय और सांवेगिक समायोजन का उनके लैंगिक विभिन्नता और ग्रामीण शहरी पृष्ठभूमि का अध्ययन करना तथा पुरुष और महिला शिक्षकों के आत्मप्रत्यय एवं सांवेगिक समायोजन के बीच संबंध को ज्ञात करना। इसमें 350 पुरुष व महिलाओं को सम्मिलित किया गया और आत्मप्रत्यय मापनी व सांवेगिक समायोजन अनुसूची का प्रयोग उपकरण के रूप में किया गया। निष्कर्ष में पाया गया कि– पुरुष और महिला शिक्षकों के जो ग्रामीण और शहरी विद्यालयों से संबंधित थे, के समायोजन के अंकों में कोई सार्थक अन्तर नहीं था तथा शहरी पुरुष और महिला शिक्षकों एवं ग्रामीण पुरुष एवं महिला शिक्षकों के आत्मप्रत्यय एवं सांवेगिक समायोजन में सार्थक अन्तर पाया गया और ग्रामीण पुरुष एवं महिला शिक्षकों का आत्मप्रत्यय एवं सांवेगिक समायोजन के माध्य सह-संबंध गुणांक अन्य शिक्षकों की अपेक्षा निम्न था।

त्यागराजन एवं रमेश (2006) ने बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों के आत्मप्रत्यय का अध्यन किया। त्रिचूनर के बी.एड. कालेज के 96 प्रशिक्षणार्थियों का न्यादर्श चुना गया। अध्ययन के मुख्य उद्देश्य निम्नवत् थे–

1. बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों को आत्मप्रत्यय के स्तर पर मापन करना।
2. बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों के स्वप्रत्यय में उनके लिए, समुदाय और उनके द्वारा पढ़े जाने वाले वैकल्पिक विषय के आधार पर यदि कोई सार्थक अन्तर हो तो ज्ञात करना।
3. अध्ययन के निष्कर्ष में पाया गया कि बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों का आत्मप्रत्यय औसत से उच्च था तथा उनके स्वप्रत्यय में उनके लिंग, समुदाय तथा उनके द्वारा पढ़े जाने वाले वैकल्पिक विषयों के आधार पर कोई अन्तर नहीं था।

रनको (2007) ने सृजनात्मकता तथा आत्मवास्तविकता पर अध्ययन किया। 64 स्नातक छात्रों को न्यादर्श के रूप में चुना गया। अध्ययन का मुख्य उद्देश्य सृजनात्मकता का आत्मवास्तविकता से संबंध ज्ञात करना था। सहसंबंधात्मक अध्ययन के द्वारा निष्कर्ष में मैस्लों (1971) तथा राजर्स (1961) के सिद्धान्तों की पुष्टि हुई जो कि सृजनात्मकता तथा आत्मअनुभव पर आधारित थे।

मैरी एंड पॉउल (2008) ने पांडिचेरी में एकीकृत पाठ्यक्रम पढ़ने वाले छात्रों के स्वप्रत्यय का अध्ययन किया। आर.के. सारस्वत की स्वप्रत्यय प्रश्नावली का प्रयोग 170 छात्रों और 120 छात्राओं पर किया गया अध्ययन का मुख्य उद्देश्य छात्र और छात्राओं के स्वप्रत्यय में उनके परिवार के आकार तथा प्रकार के आधार पर अन्तर का मापन करना था। अध्ययन के निष्कर्षों में पाया गया कि छात्रों का स्वप्रत्यय औसत से उच्च था, छात्रों और छात्राओं का आत्मप्रत्यय में कोई सार्थक अन्तर नहीं था, दिवस छात्र तथा आवासीय छात्रों के स्वप्रत्यय में अन्तर था तथा संयुक्त पृथक परिवार के छात्रों तथा छोटे बड़े परिवार के छात्रों में स्वप्रत्यय में अन्तर नहीं था।

स्वप्रत्यय

इस शब्द का प्रथम प्रयोग रोजर्स द्वारा किया गया। आत्म-संप्रत्यय से तात्पर्य व्यक्ति के उन सभी पहलुओं एवं अनुभूतियों से होता है जिसे व्यक्ति अवगत होता है, हालांकि उसका यह प्रत्यक्षण हमेशा सही नहीं होता। आत्म-संप्रत्यय को व्यक्ति प्राय: विशेष कथनों के रूप में व्यक्त करता है। जैसे– ''मैं एक व्यक्ति हूँ जो...''। आत्मसंप्रत्यय की दो विशेषतायें हैं– पहली विशेषता यह है कि आत्म-संप्रत्यय का एक बार निर्माण हो जाने पर उसमें सामान्यत: परिवर्तन नहीं होता। हाँ, बहुत कोशिश करने से उसमें परिवर्तन हो सकता है जो अनुभूतियाँ व्यक्ति के आत्म-संप्रत्यय के साथ असंगत होती हैं, उसे व्यक्ति स्वीकार नहीं करता है और यदि स्वीकार भी करता है तो विकृत रूप में।

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययन करने वाले विद्यार्थी के आत्मप्रत्यय में कुछ नवीनताएं तथा विभिन्नताएं प्रतीत होती हैं। ये विभिन्नतायें उनकी अपनी सोच पारिवारिक सदस्यों, (स्वयं सहपाठियों की उनके प्रति सोच) स्वयं समाज के रवैये के कारण होती हैं। किसी भी व्यक्ति के सामाजिक समायोजन में सकारात्मक उच्च आत्मप्रत्यय महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अतएव शोधकर्त्ता ने उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी के आत्मप्रत्यय का अध्ययन करना महत्वपूर्ण समझा है।

समस्या कथन

''उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्र-छात्राओं के स्वप्रत्यय का अध्ययन''

तकनीकी शब्दों का पारिभाषीकरण

उच्चतर माध्यमिक स्तर- उच्चतर माध्यमिक स्तर को ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में उच्चतर माध्यमिक स्तर कहा गया है। भारत की शैक्षिक संरचना में उच्चतर माध्यमिक स्तर पर छात्र को विभिन्न विषयों में समूह का चयन करके अध्ययन करना होता है। जैसे– विज्ञान वर्ग, कला वर्ग, वाणिज्य वर्ग तथा कृषि विज्ञान वर्ग आदि। इसे इण्टरमीडिएट भी कहा जाता है।

स्वप्रत्यय

आर.एल. मोरलैण्ड (1985) के अनुसार ''स्व-पहचान का समुच्चय जो कि पूर्व अनुभवों से निर्मित होते हैं और जिनका प्रयोग सामाजिक वातावरण से संबंधित उद्दीपन में व्यवस्थित एवं व्याख्यापित करने के लिए होता है, स्वप्रत्यय कहलाता है।''

अध्ययन के उद्देश्य

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के स्वप्रत्यय के स्तर का अध्ययन करना।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर के कला वर्ग के छात्रों एवं विज्ञान के छात्रों के स्वप्रत्यय का अध्ययन करना।
3. उच्चतर माध्यमिक स्तर के कला वर्ग की छात्राओं एवं विज्ञान की छात्राओं के स्वप्रत्यय का अध्ययन करना।
4. उच्चतर माध्यमिक स्तर के कला वर्ग के छात्रों एवं कला वर्ग की छात्राओं के स्वप्रत्यय का अध्ययन करना।
5. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विज्ञान वर्ग के छात्रों एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं के स्वप्रत्यय का अध्ययन करना

अध्ययन की परिकल्पनाएँ

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के स्वप्रत्यय में सार्थक अन्तर नहीं है।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर के कला वर्ग के छात्रों एवं विज्ञान के छात्रों के स्वप्रत्यय में सार्थक अन्तर नहीं है।
3. उच्चतर माध्यमिक स्तर के कला वर्ग की छात्राओं एवं विज्ञान की छात्राओं के स्वप्रत्यय में सार्थक अन्तर नहीं है।

4. उच्चतर माध्यमिक स्तर के कला वर्ग के छात्रों एवं कला वर्ग की छात्राओं के स्वप्रत्यय में सार्थक अन्तर नहीं है।
5. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विज्ञान वर्ग के छात्रों एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं के स्वप्रत्यय में सार्थक अन्तर नहीं है।

अध्ययन का सीमांकन

1. प्रस्तुत अध्ययन में केवल औरैया जनपद के विधूना तहसील के पाँच प्रमुख उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्र एवं छात्राओं को सम्मिलित किया गया।
2. प्रस्तुत अध्ययन में स्वप्रत्यय परीक्षण के लिए 100-100 छात्र एवं छात्राओं को न्यादर्श के रूप शामिल किया गया।
3. प्रस्तुत अध्ययन में केवल 50-50 छात्र एवं छात्राओं तथा कला तथा विज्ञान दोनों वर्गों को सम्मिलित किया गया।
4. प्रस्तुत अध्ययन में व्याख्यात्मक शोध विधि को सम्मिलित किया गया।
5. प्रस्तुत अध्ययन में स्वप्रत्यय परीक्षण के लिए सेल्फ कॉसेन्ट क्वैश्चनैयर का प्रयोग किया गया।

प्रतिदर्श चयन विधि

प्रस्तुत अध्ययन के संदर्भ में शोधकर्ता ने उपलब्ध जनसंख्या में से 200 इकाइयों का चयन संभावित निदर्शन के (समानुपाती) स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन विधि से किया है। समयाभाव के कारण एवं अन्य परिस्थितियों के कारण अन्य विधियों का प्रयोग नहीं किया गया एवं प्रस्तुत अध्ययन की प्रकृति के अनुसार उपर्युक्त विधि सर्वोत्तम सिद्ध हुई।

प्रस्तुत अध्ययन का न्यादर्श

प्रस्तुत अध्ययन में न्यादर्श के रूप में औरैया जनपद के विधूना तहसील क्षेत्र के पाँच उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के 200 छात्र-छात्राओं का चयन किया गया जिनमें 50-50 छात्र-छात्राएं कला तथा विज्ञान दोनों वर्गों से लिये गए।

प्रस्तुत अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण

सैल्फ कंसैप्ट क्वैश्चनेयर, आर.के. सारस्वत द्वारा निर्मित (एससीक्यू) तथा एससीक्यू में स्वप्रत्यय के विभिन्न पहलुओं से संबंधित कुल 48 प्रश्नों का समावेश किया गया है। इस उपकरण में 6 आयाम हैं। जो निम्न क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं–

- शारीरिक
- सामाजिक
- स्वभाव
- शिक्षा
- नैतिकता
- बौद्धिकता

प्रयुक्त सांख्यिकी मध्यमान, मानक विचलन तथा क्रांतिक अनुपात का प्रयोग किया गया।

परिकल्पनाओं का परीक्षण

उद्देश्य 1 : उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्र-छात्राओं के स्वप्रत्यय के स्तर का अध्ययन

H_1 छात्र एवं छात्राओं के स्वप्रत्यय में सार्थक अन्तर है।

Ho_2 छात्र तथा छात्राओं के स्वप्रत्यय में सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका-1

छात्र एवं छात्राओं के स्वप्रत्यय संबंधी प्राप्तांकों का मध्यमान, मानक विचलन तथा क्रान्तिक अनुपात

लिंग	विषय वर्ग	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मुक्तांश	क्रांतिक अनुपात	सार्थकता स्तर
छात्र	कला तथा विज्ञान	100	183.00	11.90	198	1.72	सार्थक नहीं
छात्राएं	कला तथा विज्ञान	100	179.00	9.89			

तालिका-1 का अवलोकन से स्पष्ट है कि क्रान्तिक अनुपात का मान 1.72 है जो कि सार्थकता स्तर 0.05 का मुक्तांश 198 के सारणी मान 1.97 से कम है अर्थात मध्यमानों में सार्थक अन्तर नहीं है। अतः शून्य परिकल्पना (Ho_1) स्वीकृत तथा शोध परिकल्पना (H_1) अस्वीकृत होती है अर्थात छात्र तथा छात्राओं के स्वप्रत्यय में कोई अन्तर नहीं था।

उद्देश्य 2 : कला वर्ग के छात्रों एवं विज्ञान वर्ग के छात्रों के स्वप्रत्यय का अध्ययन।

H_2 कला वर्ग के छात्रों एवं विज्ञान वर्ग के छात्रों के स्वप्रत्यय में सार्थक अन्तर है।

Ho_2 कला वर्ग के छात्रों एवं विज्ञान वर्ग के छात्रों के स्वप्रत्यय में सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका-2

कला तथा विज्ञान वर्ग के छात्रों के स्वप्रत्यय संबंधी प्राप्तांकों का मध्यमान, मानक विचलन तथा क्रान्तिक अनुपात

लिंग	विषय वर्ग	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मुक्तांश	क्रांतिक अनुपात	सार्थकता स्तर
छात्र	कला	50	175.00	8.90	98	1.66	सार्थक नहीं
छात्र	विज्ञान	50	178.00	14.90			

तालिका-2 के अवलोकन से स्पष्ट है कि क्रान्तिक अनुपात का मान 1.66 है जो सार्थकता स्तर 0.05 का मुक्तांश 98 के सारणी मान 1.98 से कम है अर्थात मध्यमानों में सार्थक अन्तर नहीं है। अतः शून्य परिकल्पना (Ho_2) स्वीकृत तथा शोध परिकल्पना (H_1) अस्वीकृत होती है अर्थात कला वर्ग के छात्रों तथा विज्ञान वर्ग के छात्रों के स्वप्रत्यय में कोई अन्तर नहीं था।

उद्देश्य 3 : कला वर्ग की छात्राओं एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं के स्वप्रत्यय का अध्ययन।

H_3 कला वर्ग की छात्राओं एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं के स्वप्रत्यय में सार्थक अन्तर है।

Ho_3 कला वर्ग की छात्राओं एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं के स्वप्रत्यय में सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका-3

कला तथा विज्ञान वर्ग की छात्राओं के स्वप्रत्यय संबंधी प्राप्तांकों का मध्यमान, मानक विचलन तथा क्रान्तिक अनुपात

लिंग	विषय वर्ग	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मुक्तांश	क्रांतिक अनुपात	सार्थकता स्तर
छात्रायें	कला	50	178.60	8.90	98	0.71	सार्थक नहीं
छात्रायें	विज्ञान	50	179.25	9.89			

तालिका-3 के अवलोकन से स्पष्ट है कि क्रान्तिक अनुपात का मान 0.71 है जो सार्थकता स्तर 0.05 का मुक्तांश 98 के सारणी मान 1.98 से कम है अर्थात मध्यमानों में सार्थक अन्तर नहीं है। अतः शून्य परिकल्पना (Ho_3) स्वीकृत तथा शोध परिकल्पना (H_3) अस्वीकृत होती है अर्थात कला वर्ग की छात्राओं तथा विज्ञान वर्ग की छात्राओं के स्वप्रत्यय में कोई अन्तर नहीं था।

उद्देश्य 4 : कला वर्ग के छात्रों एवं कला वर्ग की छात्राओं के स्वप्रत्यय का अध्ययन।

H_4 कला वर्ग के छात्रों एवं कला वर्ग की छात्राओं के स्वप्रत्यय में सार्थक अन्तर है।

Ho_4 कला वर्ग के छात्रों एवं कला वर्ग की छात्राओं के स्वप्रत्यय में सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका-4

कला वर्ग के छात्रों तथा कला वर्ग की छात्राओं के स्वप्रत्यय संबंधी प्राप्तांकों का मध्यमान, मानक विचलन तथा क्रान्तिक अनुपात

लिंग	विषय वर्ग	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मुक्तांश	क्रांतिक अनुपात	सार्थकता स्तर
छात्र	कला	50	175.00	8.90	98	1.94	सार्थक नहीं
छात्राएं	विज्ञान	50	178.60	9.60			

तालिका-4 के अवलोकन से स्पष्ट है कि क्रान्तिक अनुपात का मान 1.94 है जो सार्थकता स्तर 0.05 का मुक्तांश 98 के सारणी मान 1.98 से कम है अर्थात मध्यमानों में सार्थक अन्तर नहीं है। अतः शून्य परिकल्पना (Ho_4) स्वीकृत तथा शोध परिकल्पना (H_4) अस्वीकृत होती है अर्थात कला वर्ग के छात्रों तथा कला वर्ग की छात्राओं के स्वप्रत्यय में कोई अन्तर नहीं था।

उद्देश्य 5 : कला वर्ग के छात्रों एवं कला वर्ग की छात्राओं के स्वप्रत्यय का अध्ययन।

H_5 कला वर्ग के छात्रों एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं के स्वप्रत्यय में सार्थक अन्तर है।

Ho_5 कला वर्ग के छात्रों एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं के स्वप्रत्यय में सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका-5

कला वर्ग के छात्रों तथा कला वर्ग के छात्राओं की स्वप्रत्यय संबंधी प्राप्तांकों का मध्यमान, मानक विचलन तथा क्रान्तिक अनुपात

लिंग	विषय वर्ग	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मुक्तांश	क्रांतिक अनुपात	सार्थकता स्तर
छात्र	कला	50	188.4	14.90	98	1.29	सार्थक नहीं
छात्राएं	विज्ञान	50	180.00	10.19			

तालिका-5 के अवलोकन से स्पष्ट है कि क्रान्तिक अनुपात का मान 1.29 है जो सार्थकता स्तर 0.05 का मुक्तांश 98 के सारणी मान 1.98 से कम है अर्थात मध्यमानों में सार्थक अन्तर नहीं है। अतः शून्य परिकल्पना (Ho_5) स्वीकृत तथा शोध परिकल्पना (H_5) अस्वीकृत होती है अर्थात कला वर्ग के छात्रों तथा कला वर्ग की छात्राओं के स्वप्रत्यय में कोई अन्तर नहीं था।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि छात्रों तथा छात्राओं के आत्म प्रत्यय में कोई अन्तर नहीं है। उनके स्वयं के प्रति विचार तथा दूसरों के प्रति व्यवहार में स्त्री-पुरुष के आधार पर विषमतायें नहीं पायी गईं।

उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में विषय संकाय के आधार पर छात्रों के स्वप्रत्यय में कोई अन्तर नहीं पाया गया। विज्ञान पढ़ने वाले छात्र तथा कला पढ़ने वाले छात्रों का स्वप्रत्यय उच्च तथा समान था।

उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में विषय संकाय के आधार पर छात्राओं के स्वप्रत्यय एक समान पाये गए। उनके स्वप्रत्यय उच्च स्तर के प्राप्त हुए। विषय में परिवर्तन का उनके स्वप्रत्यय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

अध्ययन की शैक्षिक निहितार्थ

युवा पीढ़ी किसी भी राष्ट्र की भाषा उन्नति का आधार है और शिक्षा युवा पीढ़ी की मार्गदर्शक। राष्ट्र का भविष्य विद्यालयों में निर्मित होता है। इसलिए यह आवश्यक है कि इस भविष्य का आकलन किया जाए। इस उद्देश्य से उच्चतर माध्यमिक विद्यार्थियों के स्वप्रत्यय तथा सांवेगिक बुद्धिमत्ता का आंकलन किया गया। अध्ययन के निष्कर्ष में

स्वप्रत्यय तथा सांवेगिक बुद्धिमत्ता के संदर्भ में छात्र तथा छात्राओं में तथा कला विषयों का अध्ययन करने वाले व विज्ञान विषयों का अध्ययन करने वालों में कोई अन्तर स्पष्ट नहीं हुआ। अध्ययन के शैक्षिक निहितार्थ निम्नवत है:

माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं का स्वप्रत्यय उच्च स्तर का है अत: इसको बनाए रखने के लिए उचित शिक्षण माहौल का निर्माण किया जाए।

पुरुष तथा स्त्री के आधार पर विद्यार्थियों में भेद नहीं करना चाहिए। अध्यापकों तथा अभिभावकों को यह नहीं समझना चाहिए कि बालक की सोच बालिका से अच्छी है।

विषयों के अध्ययन के आधार पर विद्यार्थियों में भेद नहीं करना चाहिए क्योंकि विज्ञान पढ़ने वाले व कला पढ़ने वालों का स्वप्रत्यय एक जैसा ही है। अत: उनको एक समान स्थान दिया जाए जिससे उनमें हीन भावना न आए।

संदर्भ

चड्ढा डी.के. (2005), *कंडक्टेड एंड कंपेटिव स्टडी आफ सेल्फ कांसेप्ट एंड इमोशनल एडजस्टमेंट ऑफ मेल एंड फिमेल टीचर्स वर्किंग एट सेकण्डरी लेबल,* इंडियन एजूकेशनल एब्स्ट्रेक्ट, एन.सी.ई.आर.टी. वाल्यूम-5, 2008

द्विवेदी, शोभना, (2002), ''*कार्यशील महिलाओं के आत्मप्रत्यय एवं सामाजिक आर्थिक स्तर का उनके समायोजन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन*'' पी.एच.डी. थीसेस, सी.एस.जे. एम. युनिवर्सिटी, कानपुर।

गुप्ता एस.पी. (2008), *आधुनिक मापन और मूल्यांकन,* शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद

लाल, रमन बिहारी, (2007), *भारत में शिक्षा का विकास,* मेरठ, रस्तोगी पब्लिकेशन

मैरी एंड पाउल, (2008), *सेल्फ कासेप्ट आफ इंटीग्रेटेड कोर्स स्टूडेंट्स इन पुद्दूचेरी:* ए स्टडी जर्नल आफ एजूकेशनल रिसर्च एंड एक्सटेशन वाल्यूम 4 (1), 1-8

रनको, मार्क, ए. (2007), *क्रिएटिविटी एंड सेल्फ एक्चूलाइजेशन,* पी.एच.डी. कैलीफोर्निया स्टेट यूनिवर्सिटी पुलटर्न

राय, पारसनाथ, (2007), *अनुसंधान-परिचय,* आगरा: लक्ष्मी नारायण अग्रवाल

सिंह, अरूण कुमार, (2008), *उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान,* दिल्ली, मोतीलाल पब्लिकेशन

श्रीवास्तव, डी.एन.ए (2007), *अनुसंधान विधियां,* आगरा, साहित्य प्रकाशन

त्यागराज, पी.ए. एंड रमेश आर. (2006), *सेल्फ कॉसेप्ट आफ बी.एड. ट्रेनीज,* एजूकेशनल एबस्ट्रेक्ट वाल्यूम-4 (10), जून 33-34

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 3, दिसंबर 2013

शोध टिप्पणी/संवाद

छात्राध्यापकों की संज्ञानात्मक बुद्धि तथा उनकी संवेगात्मक बुद्धि के मध्य सहसंबंध का अध्ययन

नीतू कश्यप* एवं **विनीत श्रीवास्तव****

भारतीय संस्कृति एकता की संस्कृति रही है। यहाँ विभिन्नता में एकता पायी जाती है। विभिन्न समुदाय एवं वर्ग भिन्न-भिन्न संस्कृति के होने के बाबजूद एकता के सूत्र में बंधे रहते हैं। आधुनिकता की आँधी ने कहीं न कहीं इन भावनाओ को क्षति पहुँचायी है। समाज की वास्तविक अवनति तब शुरू होती है जब बुद्धिमान व्यक्ति में संवेगों को समझने की क्षमता का ह्रास होने लगता है और वह व्यक्तिगत लाभ व स्वार्थ के बारे में सोचने लगता है। आज के प्रतिस्पर्धात्मक युग में जब सम्पूर्ण विश्व भौतिकतावाद की अंधी दौड़ में शामिल हो रहा है एक ऐसे दृष्टिकोण की जरूरत है जो इस भुलावे को समझ सके कि हम इस दौड़ में अपने अस्तित्व को भूलते जा रहे हैं। मानव, मानव न होकर मशीन की तरह हो चुका है, संबंध गौण हो रहे हैं, आर्थिक भाव प्रबल हो रहे हैं, एक दूसरे की भावनाओं से कोई सरोकार नहीं रह गया है, अपनी-अपनी ढपली अपना राग अलाप रहा, आज का यह समाज विखण्डित होता जा रहा है। वह दिन दूर नहीं जब हम अपनी संस्कृति को भूल जायेंगे जहाँ संबंध-रिश्ते प्राथमिक जरूरत होते थे अपितु इस समाज को सम्यक दिशा दिये जाने की जरूरत है।

समाज में रहकर जीवन के विभिन्न क्रियाकलापों को सम्पादित करने के लिए हमें बुद्धि एवं विवेक का सहारा लेना पड़ता है। बुद्धि की अवधारणा विभिन्न खोजों के

*सहायक प्रोफेसर, बी.एंड. विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जहरीखाल, लैसडाउन पौढ़ी गढ़वाल, उत्तराखण्ड
**सहायक प्रोफेसर स्नातकोत्तर एवं शोध अध्ययन शिक्षा विभाग, स्वामी शुकदेवानन्द स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शाहजहाँपुर, उ.प्र.

परिणामस्वरूप काफी व्यापक हो चुकी है। विद्वानों ने विभिन्न प्रकार की बुद्धि के बारे में बतलाया कि विभिन्न प्रकार के कार्यो को सम्पादित करने में कई प्रकार की बौद्धिक क्षमताओं का योगदान होता है। इन्हीं के अन्तर्गत बुद्धि के दो मुख्य प्रकारों पर शोधकर्ता का शोध कार्य केन्द्रित रहा, वह प्रकार हैं संज्ञानात्मक बुद्धि तथा संवेगात्मक बुद्धि।

संज्ञानात्मक बुद्धि

कैपलान एवं सडोक के अनुसार ''संज्ञानात्मक बुद्धि समस्या समाधान, अनुभवों के प्रयोग तर्क द्वारा सोचने तथा नई चीजों के सीखने की योग्यता है।'' सुसैन डन ने इसे इस प्रकार परिभाषित किया है ''संज्ञानात्मक बुद्धि वह मानसिक योग्यता है जिसके द्वारा व्यक्ति तर्क, चिन्तन, पढ़ना-लिखना, विश्लेषण तथा विभिन्न समस्याओं के कारणों की पहचान करता है।''

मनुष्य की संज्ञानात्मक बुद्धि से तात्पर्य किसी कार्य को करते समय अपने अनुभवों का उपयोग करना, तर्क द्वारा निर्णय लेना तथा विकास के क्रम में समस्याओं का समाधान करते हुए लगातार नयी चीजों को सीखने की योग्यता है। इसके द्वारा ही व्यक्ति के अनुभवों में परिपक्वता आती है जिससे व्यक्ति का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों में विकास होता है। अतः संज्ञानात्मक बुद्धि में प्रमुख तत्व तर्क, चिन्तन तथा समस्या समाधान को माना जा सकता है।

चिन्तन एक जटिल संज्ञानात्मक प्रक्रिया है। यह एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी विशिष्ट एवं लक्ष्य केन्द्रित समस्या का समाधान करता है। इसका आरम्भ किसी समस्या, कठिनाई, बाधा, संकट, असंतोष अथवा इच्छा से होता है। इसी के आधार पर व्यक्ति समस्या के समाधान के अनेक उपाय सोचता है और समस्या का समुचित समाधान करता है। चिन्तन की प्रक्रिया सरल से कठिन की ओर अग्रसर होती है। इसमें विश्लेषण, संश्लेषण क्रियाओं का विशेष स्थान होता है। अतः समग्र रूप से हम कह सकते हैं कि चिन्तन की प्रक्रिया व्यक्ति के व्यवहार के सभी पक्षों यथा ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा चेष्टात्मक से संबंधित होती है।

तर्क को चिन्तन का सर्वोच्च रूप कहा जाता है। तर्क एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है। किसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए संगठित एवं व्यवस्थित रूप से चिन्तन किया जाता है तथा कार्य-कारण संबंध खोजे जाते हैं, उसे तर्क कहते हैं। चिन्तन एवं तर्क

की ही एक आवश्यक परिणित समस्या समाधान है जब व्यक्ति किसी लक्ष्य पर पहुँचने के लिए प्रयासरत होता है, परन्तु प्रारम्भिक प्रयासों में उसे सफलता नहीं मिलती है, तब व्यक्ति मार्ग में आने वाली कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करके अपने लक्ष्य पर पहुँच जाता है तब कहा जाता है कि व्यक्ति ने समस्या का समाधान कर लिया है। वस्तुत: समस्या समाधान चिन्तन का ही एक विशिष्ट रूप है। समस्या उस परिस्थिति को कहते हैं जिसके लिए व्यक्ति के पास पहले से तैयार कोई समाधान नहीं होता है, ऐसी परिस्थिति का सामना करने एवं उसका समाधान खोजने के लिए व्यक्ति को चिन्तन, तर्क का सहारा लेना पड़ता है।

समग्रत: संज्ञानात्मक बुद्धि के प्रत्यय को समझने का प्रयास किया है। इसके आधार पर यह स्पष्ट रूप से समझा जा सका है कि मनुष्य किस प्रकार अपने अनुभवों के आधार पर चिन्तन तर्क के द्वारा समस्या समाधान तक पहुँचता है तथा नई चीजों की खोज करता है एवं नए अनुभवों का सृजन तथा पुराने अनुभवों में परिमार्जन करता है।

संवेगात्मक बुद्धि

संवेगात्मक बुद्धि से तात्पर्य व्यक्ति विशेष की उस समग्र क्षमता (सामान्य बुद्धि से संबंधित होते हुए भी अपने आप में स्वतन्त्र) से है जो उसे उसकी विचार प्रक्रिया का उपयोग करते हुए अपने तथा दूसरों के संवेगों को जानने, समझने तथा उनकी ऐसी उचित अनुभूति एवं अभिव्यक्ति करने-कराने में इस प्रकार मदद करे कि वांछित व्यवहार तथा उसके सापेक्ष अनुक्रियाएं कर सके, जिनसे उसे दूसरों के साथ सांमजस्य स्थापित करते हुए अपना समुचित हित करने हेतु अधिक से अधिक अच्छे अवसर प्राप्त हो सकें।

संवेगात्मक बुद्धि पद का प्रयोग 1990 में सबसे पहले दो अमेरिकन प्रोफेसर डा. जॉन मेयर तथा डा. पीटर सेलोवे ने किया तथा इसे लोकप्रिय बनाने का श्रेय अमेरिकन मनोवैज्ञानिक डेनियल गोलमैन को ही जाता है। जॉन डी. मेयर तथा पीटर सेलोवे के अनुसार ''संवेगात्मक बुद्धि एक योग्यता है जिससे हम अपने स्वयं तथा अन्य व्यक्तियों की भावनाओं एवं संवेगों का अनुवीक्षण करते हैं। इन सूचनाओं के आधार पर उनमें अन्तर करते हैं और अपने कार्यों एवं चिन्तन को निर्देशित करते हैं।''

हम सभी में अपने संवेगों से निपटने हेतु अलग-अलग ढंग की क्षमता और योग्यता पायी जाती है और उसी के अनुरूप एक समूह में दूसरों की तुलना में किसी भी व्यक्ति

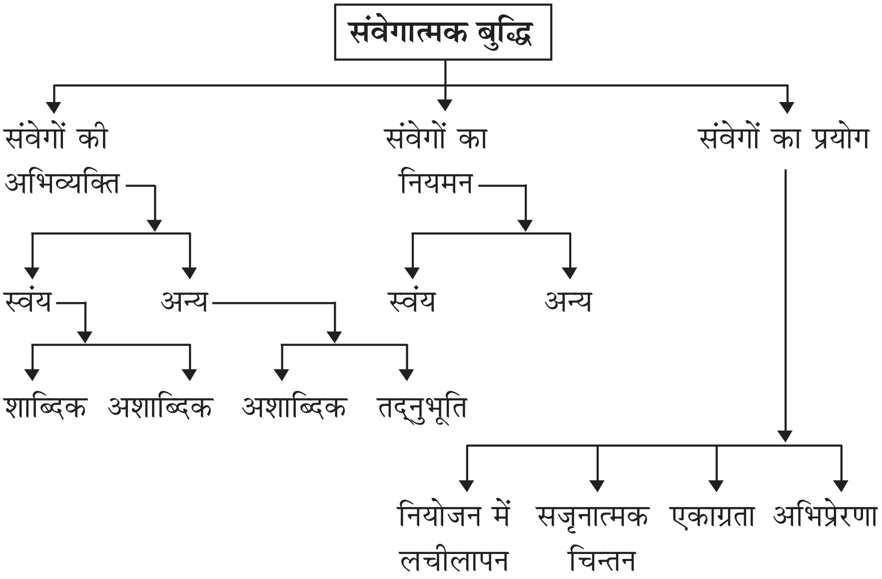

विशेष की संवेगात्मक बुद्धि की दृष्टि से अधिक या कम बुद्धिमान माना जाता है। एक व्यक्ति को उतना ही संवेगात्मक रूप से बुद्धिमान माना जाता है जितना कि वह अपने स्वयं के संवेगों की सही जानकारी रखे, दूसरों की शारीरिक भाषा, मुख मुद्रा, बोलने के अन्दाज द्वारा संवेगों को पहचान सकें, दूसरो के संवेगों को पहचानकर अपनी विचार प्रक्रिया (जैसे– अपने संवेगों तथा भावनाओं का समस्या समाधान, विश्लेषण करना, निर्णय लेना आदि) में शामिल कर सके, संवेगों की प्रकृति, उनकी तीव्रता तथा परिणामों से अवगत हो सके, संवेगों की अभिवृत्ति तथा उस पर नियन्त्रण कर सके, उन्हें अपने स्वयं के तथा दूसरों के हित चिन्तन, आपसी मेल-जोल तथा भाई-चारे हेतु प्रयोग में लाने की क्षमता का विकास कर सके।

डेनियल गोलमेन के अनुसार– ''संवेगात्मक बुद्धि एक योग्यता है जिससे हम अपनी स्वयं की भावनाओं तथा अन्य व्यक्तियों की भावनाओं को पहचानते हैं, जिससे हम स्वयं को अभिप्रेरणा देते हैं तथा अपनी भावनाओं को अन्य व्यक्तियों के साथ संबंधों के लिए प्रबंध करते हैं।'' गोलमेन ने संवेगात्मक बुद्धि के 5 महत्वपूर्ण आयाम बताए हैं जिन पर संवेगात्मक बुद्धि कार्य करती है। इन आयामों को निम्न विवरण द्वारा समझा जा सकता है–

1. आत्म-सजगता (Self awareness)

अपनी आन्तरिक स्थिति, प्राथमिकताओं और अंत:ज्ञान को जानना

संवेगात्मक सजगता - अपने तथा दूसरों के संवेगों तथा उनके प्रभावों को जानना

सही आत्म निर्धारण - संवेग की तीव्रता तथा उसकी सीमा जानना

आत्म-विश्वास - अपनी आत्म-योग्यता तथा आत्म-क्षमता की जानकारी

2. आत्म-नियंत्रण (Self Regulation)

अपनी आंतरिक स्थिति तथा आवेग का नियंत्रण या प्रबन्ध करना

आत्म-नियन्त्रण - आवेग तथा विघटनकारी संवेग को नियंत्रित करना

विश्वसनीयता - आदर्शों (जैसे-सत्यनिष्ठा, ईमानदारी) को बनाये रखना

कर्त्तव्य निष्ठता - व्यक्तिगत रूप से कार्यों की जिम्मेदारी लेना

अनुकूलनीयता - परिवर्तन के प्रति सहनशीलता

नवीनता - नये विचार, उपागम तथा नई जानकारी में सुखकारी महसूस करना

3. अभिप्रेरणा (Motivation)

लक्ष्य तक पहुँचने के लिए भावात्मक प्रवृत्ति का मार्गदर्शन

उपलब्धि प्रेरणा - आदर्श प्रेरणा तथा उसमें सुधार के लिए प्रयास करना

क्रमबद्धता - समूह के लक्ष्य के लिए सम्मिलित होना

पहल शक्ति - किसी भी अवसर पर कार्य करने की तत्परता

आशावादी - रुकावटों के बाबजूद लक्ष्य की खोज में डटे रहना

4. तद्नुभूति (Empathy)

दूसरों की भावनाओं, आवश्यकताओं तथा चिन्ता की जानकारी

दूसरो की समझ - दूसरों की भावनाओं को अनुभव करना

दूसरो की चिन्ता में रुचि लेना - दूसरो की चिन्ता में सक्रिय रुचि लेना

5. सामाजिक कौशल (Social Skill)

प्रभाव - विश्वास के लिए प्रभावी युक्ति को काम में लाना

सम्प्रेषण – खुलकर सुनना (ध्यानपूर्वक) तथा अपना संदेश दूसरों तक पहुँचाना

द्वंद प्रबन्ध – बातचीत करना तथा विवाद समाधान करना

नेतृत्व – व्यक्ति या समूह को प्रेरित व मार्गदर्शन करना

संबंध निर्माण सहायक संबंधों का पोषण करना

दल बनाने की योग्यता – सामूहिक लक्ष्य खोजने के लिए समूह–सहक्रिया उत्पन्न करने की योग्यता।

आवश्यकता एवं महत्व

मनुष्य की संज्ञानात्मक बुद्धि एवं उसकी संवेगात्मक बुद्धि के सह–संबंध पर दृष्टि डालें तो पाते हैं कि आज की व्यस्तता एवं आधुनिकता के आवरण में जिंदगी जीता मानव संवेगों के स्तर पर शिथिल होता जा रहा है। अपनी कामनाओं, आकांक्षाओं को पूरा करने में तल्लीन होने कारण वह सामाजिक संबंधों से दूर हटता जा रहा है। भारतीय समाज में अधिकतर संयुक्त परिवार की परम्परा का निर्वहन होता था, पर अब स्थिति उलट–सी गई है, आज एकल परिवार की अवधारणा को बढ़ावा दिया जा रहा है। जिससे आपसी मेल–मिलाप में कमी आयी है तथा सांवेगिक स्तर पर छति हुई है। आधुनिक समाज में बहुत बुद्धिजीवी हैं परन्तु उनमें संवेगों को समझने तथा अपने संवेगों को नियंत्रित करने की क्षमता का अभाव दृष्टिगोचर हो रहा है। बुद्धि के एक प्रकार में तो हम बहुत उच्च स्तर पर पहुँच चुके हैं। क्योंकि मानव मस्तिष्क में अनन्त संभावनाएँ हैं। हम अपने मस्तिष्क का जितना अधिक उपयोग करते हैं उतना ही वह कुशाग्र होता है। परन्तु महत्वपूर्ण बात है कि क्या हम इस क्षमता का उपयोग सकारात्मक कार्यों में कर रहे हैं?

जैसे कोई वैज्ञानिक अपनी तकनीकी क्षमता के बल पर बहुत अच्छी मारक क्षमता का हथियार बनाता है, परन्तु उसका उपयोग समाज की विध्वंसात्मक गतिविधियों में करता है। इससे स्पष्ट होता है कि उसमें संज्ञानात्मक बुद्धि का विकास तो बहुत उच्च स्तर तक हो गया है, परन्तु संवेगात्मक बुद्धि का विकास नहीं हो पाया है। इस कारण वह अपने नकारात्मक संवेगों को नियंत्रित नहीं कर सका तथा अन्य लोगों के संवेगों को भी नहीं समझ सका।

आज के समाज में एक दूसरे के भावों की समझ का ह्रास होता जा रहा है। व्यक्ति

अपने निजी स्वार्थ में इतना तल्लीन है कि उसे किसी की भावनाओं से कोई मतलब नहीं रहा। वह अपने निजी स्वार्थ के लिए किसी का कितना भी नुकसान कर सकता है, चाहे उसे क्षणिक लाभ ही क्यों न हो।

शिक्षक की भूमिका के पक्ष में यदि विचार करें, तो यदि कोई शिक्षक अत्यन्त ज्ञानवान है अर्थात् उसकी संज्ञानात्मक बुद्धि श्रेष्ठ है, उसे अपने विषय पर प्रभुत्व हासिल है, परन्तु यदि कक्षा के बच्चे उससे संतुष्ट नहीं होते, कारण – शिक्षक का बात-बात पर गुस्सा करना है। इसका अर्थ है कि शिक्षक में संवेगात्मक बुद्धि का अभाव है या क्षीर्ण है। वह कक्षा में बच्चों की प्रतिक्रियाओं को सही से समझने में असमर्थ है, जबकि संज्ञानात्मक बुद्धि के स्तर पर वह उच्चतम श्रेणी पर है। संवेगात्मक बुद्धि से तात्पर्य उस योग्यता से है जिससे व्यक्ति अपने तथा दूसरों के संवेगों को पहचानकर, समझकर अपनी विचार प्रक्रिया में शामिल कर दूसरों की भावनाओं को तथा संबंधों के लिए प्रबन्ध करता है।

संवेगात्मक तथा संज्ञानात्मक बुद्धि के संदर्भ में अन्य अनुसंधानकर्ताओं ने भी शोध किये है। सुभ्रामंयम, के. तथा निवासराव, के. श्री (2008) ने माध्यमिक कक्षा के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि तथा संवेगात्मक बुद्धि के संदर्भ में अध्ययन किया। पाण्डा, सुमन्त कुमार (2009) ने छात्राध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि तथा व्यक्तित्व के शील गुणों के मध्य सह-संबंध का अध्ययन किया। आर. सहाय गैरी तथा सैमुअल, मनोरमा (2010) ने छात्राध्यापकों की शैक्षिक अभिवृत्ति पर संवेगात्मक बुद्धि के प्रभाव का अध्ययन किया। जाधव, वन्दना बी. तथा पाटिल अजय कुमार (2010) ने सामान्य बुद्धि, शैक्षिक उपलब्धि व संबंध में छात्राध्यापकों के मध्य संवेगात्मक बुद्धि का अध्ययन किया। लाल चमन शर्मा, डॉ. ए.के. तथा शर्मा, डा. एस.के. (2011) के स्वप्रत्यय के संदर्भ में अनुसूचित जाति के छात्रों की संवेगात्मक बुद्धि का अध्ययन किया। रेड्डी, डॉ. जी. लोकनाढ़ा तथा आर. पूर्णिमा (2011) ने बधिर छात्रों के विद्यालयों के शिक्षण शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि तथा व्यवसायिक दबाव का अध्ययन किया। सिंह डा. वीरमति तथा वर्मा, शैलेन्द्र (2011) ने संवेगात्मक बुद्धि के स्तरों से सृजनात्मकता की भविष्यवाणी का अध्ययन किया। बानो रेशमा एवं सिंह वीरमति ने प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि एवं शैक्षिक उपलब्धि में संबंध का अध्ययन किया।

बुद्धि से संबंधित विभिन्न शोधों का अध्ययन करने के पश्चात् मैने इस पक्ष पर ध्यान केन्द्रित किया कि संज्ञान के साथ-साथ संवेगों को जानना भी नितान्त आवश्यक है। अतः इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संज्ञानात्मक बुद्धि के साथ संवेगात्मक बुद्धि के महत्व को भी समझना होगा तथा यह देखना होगा कि संवेगात्मक बुद्धि का प्रभाव संज्ञानात्मक बुद्धि पर किसी प्रकार पड़ता है तथा इसके द्वारा हमारे व्यक्तित्व के विकास से हम समाज में अपनी भूमिका का सही से निर्वहन कर सकेगें तथा अपने जीवन को सार्थक बना सकेगें। अतः इस विषय पर शोध करने के अत्यन्त दूरगामी लाभ संदेह से परे हैं। इसी दिशा में शोधकर्ता ने विनम्र प्रयास किया है।

शोध शीर्षक

''बी.एड. छात्राध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि तथा उनकी संज्ञानात्मक बुद्धि के मध्य सह-संबंध का एक अध्ययन।''

समस्या का परिभाषीकरण

प्रस्तुत लघु-शोध अध्ययन का परिभाषीकरण निम्नवत् है :

बी.एड. छात्राध्यापक- बी.एड. छात्राध्यापकों से तात्पर्य है बी.एड. कक्षाओं में शिक्षण प्रशिक्षण लेने वाले महिला तथा पुरुष वर्ग के कला व विज्ञान के विद्यार्थी।

संवेगात्मक बुद्धि - एक ऐसी योग्यता जिसमें व्यक्ति स्वंय के तथा अन्य व्यक्तियों की भावनाओं को पहचानते हैं जिससे हम स्वयं को अभिप्रेरणा देते हैं तथा अपनी भावनाओं को अन्य व्यक्तियों के साथ संबंधों के लिए प्रबन्ध करते हैं।

संज्ञानात्मक बुद्धि - संज्ञानात्मक बुद्धि का तात्पर्य उस योग्यता से है जिससे व्यक्ति समस्या का समाधान, अनुभवों का प्रयोग, तर्क तथा चिन्तन द्वारा सोचने तथा नई चीजों को सीखना हैं।

सह-संबंध - दो चरों के मध्य संबंध ज्ञात करना अर्थात् एक चर के घटने एवं बढ़ने की प्रवृत्ति का दूसरे चर पर प्रभाव देखना सह-संबंध के अन्तर्गत आता है।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत लघु-शोध अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :

1. बी.एड. छात्राध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि का उनकी संज्ञानात्मक बुद्धि के मध्य सह-संबंध ज्ञात करना।
2. पुरुष वर्ग के बी.एड. छात्राध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि का उनकी संज्ञानात्मक बुद्धि के मध्य सह-संबंध ज्ञात करना।
3. महिला वर्ग के बी.एड. छात्राध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि का उनकी संज्ञानात्मक बुद्धि के मध्य सह-संबंध ज्ञात करना।
4. कला वर्ग के बी.एड. छात्राध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि का उनकी संज्ञानात्मक बुद्धि के मध्य सह-संबंध ज्ञात करना।
5. विज्ञान वर्ग के बी.एड. छात्राध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि का उनकी संज्ञानात्मक बुद्धि के मध्य सह-संबंध ज्ञात करना।

मुख्य परिकल्पना

बी.एड. छात्राध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि तथा उनकी संज्ञानात्मक बुद्धि के मध्य कोई सार्थक सह-संबंध नहीं है।

उप-परिकल्पनाएँ

1. पुरुष वर्ग के बी.एड. छात्राध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि तथा उनकी संज्ञानात्मक बुद्धि के मध्य कोई सार्थक सह-संबंध नहीं है।
2. महिला वर्ग के बी.एड. छात्राध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि तथा उनकी संज्ञानात्मक बुद्धि के मध्य कोई सार्थक सह-संबंध नहीं है।
3. कला वर्ग के बी.एड. छात्राध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि तथा उनकी संज्ञानात्मक बुद्धि के मध्य कोई सार्थक सह-संबंध नहीं है।
4. विज्ञान वर्ग के बी.एड. छात्राध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि तथा उनकी संज्ञानात्मक बुद्धि के मध्य कोई सार्थक सह-संबंध नहीं है।

विधि

प्रस्तुत लघुशोध कार्य में आँकड़ों के संकलन हेतु सर्वेक्षण पद्धति का प्रयोग किया गया है।

समष्टि

प्रस्तुत लघु शोध कार्य में समष्टि का आशय शाहजहाँपुर जनपद के सभी बी.एड. महाविद्यालय जिनकी संख्या तीन है तथा इसमें अध्ययनरत् बी.एड. छात्राध्यापकों की कुल संख्या 270 से है।

शोध न्यादर्श

प्रस्तुत अध्ययन हेतु न्यादर्श का चयन स्तरीकृत आनुपातिक सम्भाविक प्रतिचयन विधि द्वारा किया गया जिसके अन्तर्गत शाहजहाँपुर जनपद के तीन महाविद्यालय जहाँ बी.एड. कोर्स संचालित हो रहे हैं, ये अध्ययनरत् (100 + 100 + 70 = 270) छात्राध्यापक कुल समष्टि के रूप में चयनित है जिनमें 10 : 10 : 7 का अनुपात है। अतः 50 + 50 + 35 = 135 छात्राध्यापकों का अनुपात के आधार पर न्यादर्श के रूप में चयनित किया गया जिसमें से 15 छात्राध्यापकों ने परीक्षण अपूर्ण छोड़ दिया। अन्ततः 120 छात्राध्यापकों के आधार पर शोध अध्ययन किया गया।

शोध उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन में बी.एड. छात्राध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि तथा संज्ञानात्मक बुद्धि के मध्य सह-संबंध ज्ञात करने के लिए दो प्रकार की मापनियों का प्रयोग किया गया है :

संवेगात्मक बुद्धि मापनी

अनुकूल हिदे, संजय पेथे तथा उपिन्दर धर द्वारा निर्मित एवं नेशनल साइकोलोजिकल कॉरपोरेशन, आगरा द्वारा प्रकाशित है। इस मापनी में 34 पद हैं जिसमें उत्तर के लिए पांच विकल्पों में से किसी एक विकल्प पर सही का निशान लगाना है। परीक्षार्थी अनुभव के आधार पर किसी एक विकल्प (पूर्णतया सहमत, सहमत, अनिश्चित, असहमत, पूर्णतया असहमत) पर प्रतिक्रिया व्यक्त करेगा।

विश्वसनीयता एवं वैधता

परीक्षण निर्माणकर्त्ता द्वारा परीक्षण की विश्वसनीयता गुणांक 0.83 बताई गई है तथा परीक्षण की वैधता 0.69 बतायी गई है।

फलांकन प्रक्रिया

प्रत्येक पद के लिए 05 विकल्प दिये गये हैं – (पूर्णतया सहमत, सहमत, अनिश्चित, असहमत, पूर्णतया असहमत) जिनमें से विषयी को एक विकल्प चुनना है। पूर्णतया सहमत के लिए 5 अंक एवं क्रमशः सहमत, अनिश्चित, असहमत, पूर्णतया असहमत के लिए 4,3,2,1 अंक निर्धारित किये गये हैं।

छात्राध्यापकों ने जिन प्रश्नों का उत्तर पूर्णतया सहमत के रूप में दिया है, उन प्राप्तांकों का योग करने के पश्चात् कुल योग छात्राध्यापक की संवेगात्मक बुद्धि के प्राप्तांक के रूप में दर्शाया गया है।

संज्ञानात्मक बुद्धि मापनी

एस. जलोटा द्वारा निर्मित साधारण मानसिक योग्यता परीक्षण है जो साइको-सैंटर, बनारस द्वारा प्रकाशित है।

इस मापनी में पाँच खण्ड हैं। प्रत्येक खण्ड में मानसिक योग्यता को जांचने के लिए 20 प्रश्न हैं। कुल प्रश्नों की संख्या 100 है जिनके उत्तर 20 मिनट में देने हैं। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर, संख्या में है जिसे उत्तर पत्रक में भरना है।

विश्वसनीयता एवं वैधता

एस. जलोटा द्वारा निर्मित साधारण मानसिक योग्यता परीक्षण की विश्वसनीयता + 0.928 है तथा परीक्षण की वैधता +0.50 से +0.78 है।

फलांकन प्रक्रिया

परीक्षण में 100 प्रश्न हैं जिन्हें 5 खण्डों में विभाजित किया हुआ है। प्रत्येक खण्ड में प्रश्नों की संख्या 20 है। प्रत्येक सही उत्तर के लिए 01 अंक तथा गलत उत्तर के लिए 0 अंक प्रदान किये गए हैं। प्रत्येक खण्ड के प्राप्तांकों का अलग-अलग योग करके अन्त में एक समग्र योग निकाल लेते हैं। यही विषयी की संज्ञानात्मक बुद्धि को दर्शाता है।

सांख्यिकीय तकनीकी

प्रस्तुत शोध अध्ययन के उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुए शोधकर्त्री ने सांख्यिकीय विधि के अन्तर्गत कार्ल पियरसन द्वारा प्रतिपादित गुणनफल-आधूर्ण सह-संबंध गुणांक का प्रयोग किया तथा सह-संबंध ज्ञात करने के लिए मूल प्राप्तांक विधि का चयन किया।

मुख्य परिकल्पना

''बी.एड. छात्राध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि तथा अनकी संज्ञानात्मक बुद्धि के मध्य कोई सार्थक सह-संबंध नहीं होता है।''

परिकल्पना परीक्षण हेतु छात्राध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि की उनकी संज्ञानात्मक बुद्धि के अलग-अलग प्राप्तांक प्राप्त करके उनमें बीच सह-संबंध की सार्थकता की जाँच के लिए Product moment correlation का प्रयोग किया गया। इस संदर्भ में परिगणित मूल्य तालिका-1 में प्रदर्शित है।

तालिका-1

Σx	Σy	Σx^2	Σy^2	Σxy	N	R	dt	सार्थकता स्तर 5%	अन्तर	परिकल्पना
8900	7029	812925	432651	533885	120	0.222	118	0.174	सार्थक 2227.174	अस्वीकृत

X = संवेगात्मक बुद्धि, Y = संज्ञानात्मक बुद्धि।

तालिका-1 पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि संवेगात्मक तथा संज्ञानात्मक बुद्धि के प्राप्तांकों का योग क्रमशः 8900 तथा 7029 है एवं इनके वर्गों का योग क्रमशः 812925 तथा 432651 है। दोनों के प्राप्तांकों के गुणनफल का योग 533885 है। दोनों के मध्य सह-संबंध गुणांक r का मान 0.222 है जो स्वतंत्रयांश 118 के लिए 5 प्रतिशत सार्थकता स्तर पर तालिका मूल्य .174 से अधिक है। अतः इस परिपेक्ष्य में शून्य परिकल्पना अस्वीकृत हो जाती है। अर्थात छात्राध्यापकों की संज्ञानात्मक तथा उनकी संवेगात्मक बुद्धि में सह-संबंध है।

उप-परिकल्पना परीक्षण : उप-परिकल्पनाओं के परीक्षण हेतु छात्राध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि की उनकी संज्ञानात्मक बुद्धि के अलग-अलग प्राप्तांक प्राप्त करके उनमें बीच सह-संबंध की सार्थकता की जाँच के लिए Product moment correlation का प्रयोग किया गया। इस संदर्भ में परिगणित मूल्य तालिका-02 में प्रदर्शित है।

अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन हेतु शाहजहाँपुर जनपद के तीन महाविद्यालय में प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे

270 छात्राध्यापकों की समष्टि में से 120 छात्राध्यापकों को न्यादर्श के रूप में चयनित किया गया। छात्राध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि तथा उनकी संज्ञानात्मक बुद्धि के मध्य सह-संबंध के अध्ययन हेतु परिकल्पनाएं स्थापित की गईं, परिकल्पना परीक्षण के लिए कार्ल पियरसन गुणनफल आघूर्ण सह-संबंध गुणांक का प्रयोग किया गया जिससे सह-संबंध की सार्थकता की जांच की गई जिससे निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुए :

(1) छात्राध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि तथा उनकी संज्ञानात्मक बुद्धि के मध्य सार्थक सह-संबंध है अर्थात् समग्र रूप से छात्राध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि तथा संज्ञानात्मक बुद्धि आपस में सह-संबंधित होता है। इसका प्रभाव एक दूसरे पर पड़ता है।

(2) पुरुष वर्ग के छात्राध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि तथा उनकी संज्ञानात्मक बुद्धि में सार्थक सह-संबंध नहीं है।

इसका कारण यह हो सकता है कि पुरुष वर्ग अपने कार्यों को संचालित करते समय संवेगों के प्रति दृढ़ रवैया अपनाते हैं। वे संवेगात्मक स्तर पर दृढ़ होते हैं। अतः वे कार्य करते समय संवेगों को महत्व नहीं देते हैं। इसलिए प्रशिक्षण के दौरान कुछ सांवेगिक कार्यक्रमों को शामिल किया जाना चाहिए जिससे वह अपने संवेगों के प्रति अधिक दृढ़ न रहकर शिक्षण करते समय बालक की भावनाओं को समझ सकें तथा उन्हें सही दिशा दे सकें तथा अपने शिक्षण कार्य में अच्छी उपलब्धि पा सकें।

(3) महिला वर्ग के छात्राध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि तथा उनकी संज्ञानात्मक बुद्धि के मध्य सार्थक सह-संबंध है।

चूँकि महिलाएं भावुक होती हैं। वह समाज में माँ, बेटी, बहन आदि विभिन्न भूमिकाओं का निर्वहन करती हैं।, अतः बुद्धि के साथ संवेगों का सह-संबंध होना लाजमी है। यह शिक्षण व्यवसाय के लिए सुखद है तथा इसके द्वारा अपने शिक्षण कार्य को अधिक सफलतापूर्वक निर्वाहित कर सकेंगी।

(4) अध्ययन के आधार पर कला वर्ग के छात्राध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि तथा उनकी संज्ञानात्मक बुद्धि के मध्य सार्थक सह-संबंध नहीं है।

हालांकि कला वर्ग के छात्र विभिन्न मानवीय विषयों का अध्ययन करते हैं

तालिका–2

परिगणित मूल्य	उपपरिकल्पना							
	1		2		3		4	
	पुरुष		महिला		कला		विज्ञान	
	संवेगात्मक बुद्धि	संज्ञानात्मक बुद्धि	संवेगात्मक बुद्धि	संज्ञानात्मक बुद्धि	संवेगात्मक बुद्धि	संज्ञानात्मक बुद्धि	संवेगात्मक बुद्धि	संज्ञानात्मक बुद्धि
$\Sigma x \& \Sigma y$	4665	3586	4230	3443	5520	4525	3480	2534
$\Sigma x^2 \& \Sigma y^2$	458275	222984	368200	210047	478600	268181	348950	166030
Σxy	273318		256615		313025		222370	
N	60		60		80		40	
r	–0.190		0.469		0.023		0.208	
df	58		58		78		38	
सारणी मूल्य	0.250		0.250		0.217		0.304	
अन्तर	निरर्थक		सार्थक		निरर्थक		निरर्थक	
परिकल्पना स्थिति	स्वीकृत		अस्वीकृत		स्वीकृत		स्वीकृत	

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि उप–परिकल्पना संख्या 01, 03, तथा 04 स्वीकृत हुई है एवं उप–परिकल्पना 02 अस्वीकृत हुई है।

तथा समाज का गहन विश्लेषण तथा अध्ययन करते हैं। इनकी संवेगात्मक बुद्धि का संबंध संज्ञानात्मक बुद्धि के साथ होने से वह अधिक सफल शिक्षक बन सकते हैं। इसके लिए प्रशिक्षण के दौरान विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए तथा सामुदायिक कायक्रमों का सुचारू रूप से क्रियान्वयन किया जाना चाहिए जिससे वह समाज से व्यवहारिक रूप से जुड़ सकें तथा उनकी भावनाओं को समझ सकें तथा अपने भावी व्यवसाय में सफलता की नित नई सीढ़ियाँ चढ़ सकें।

(5) विज्ञान वर्ग के छात्राध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि तथा उनकी संज्ञानात्मक बुद्धि के मध्य सार्थक सह–संबंध नहीं है।

चूँकि विज्ञान के छात्र वैज्ञानिक विषयों को जैसे भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान, गणित आदि का अध्ययन करते हैं। इन विषयों में भावनाओं से ज्यादा नियमों को महत्व दिया जाता है। पूर्व नियोजित सोपानों के द्वारा ही अध्ययन करना होता है। इनका कला वर्ग के छात्रों की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण होता है।

संदर्भ

अरुनमोझी ए., एवं के. डॉ. राजेन्द्रन, *जरनल कम्न्यूनिटी गाइडेन्स एण्ड रिसर्च मार्च 2008,* अंक 25

बानो रेशमा, सिंह वीरमति : *परिप्रेक्ष्य,* वर्ष 18, अंक 2, अगस्त 2011, न्यूपा, नई दिल्ली।

वेस्ट जॉन डब्लू, *रिसर्च इन एजूकेशन,* प्रिटिस हाल आफ इण्डया प्रा. लि. नई दिल्ली

भटनागर, डा. आर.पी., भटनागर, डा. मीनाक्षी : शिक्षा अनुसंधान इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ।

चौहान एस.एस. *एडवांसड साइक्लोजी,* विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि. नई दिल्दी

डण्डापानी, एस. : *एडवान्सड एजूकेशनल साइक्लोजी,* अनमोल पब्लिकेशन प्रा.लि. दिल्ली

डाण्डेकर डब्लू.एन. : *साइक्लोजिकल फाउण्डेशन आफ एजूकेशन,* मैकमिलन इण्डिया, लि.

डा. उमा देवाी, *एजूट्रेक,* अगस्त 2009 वाल्यूम 8 नं0 12

गोलमेन डेनिएल, *वर्किंग विद इमोसनल इटेलिजेन्स,* न्यूयार्क बनटेम बुक 1998

गैरेट हनरी ई. बुडवर्स आर.एस., *स्टेटिक्स इन साइक्लोजी एण्ड एजूकेशन*

कूप्पू स्वामी बी. : *चाइल्ड बिहेवियर एण्ड डेवलेपमेंट* विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि.

माथुर, डॉ. एस.एस. : *शिक्षा मनोविज्ञान,* श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

मिश्र, डा. पी.सी. : *आज का विकासात्मक मनोविज्ञान,* साहित्य प्रकाशन, आगरा।

पाण्डेय कल्पलता, श्रीवास्तव, एस.एस. : *शिक्षा मनोविज्ञान, भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टि,* टाटा मैग्रोहिल

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 3, दिसंबर 2013

चिंतक और चिंतन

ज्याँ पियाजे का भाषा चिंतन

बीरेन्द्र सिंह रावत*

बुनियादी विश्वास

ज्याँ पियाजे का महत्वपूर्ण योगदान यह समझाने में है कि बच्चा, वयस्कों से मात्रात्मक ही नहीं गुणात्मक रूप में भी भिन्न होता है। उनका जन्म 1896 में स्विटजरलैंड में हुआ था। शुरुआत में पियाजे ने जीव विज्ञान का अध्ययन किया। 21 वर्ष की उम्र में उनको जीव विज्ञान के क्षेत्र में पी-एच.डी. की उपाधि मिली। जीव विज्ञान के साथ-साथ इनकी रुचि दर्शनशास्त्र में भी होने लगी। दर्शनशास्त्र में भी ज्ञान मीमांसा इनकी रुचि का विषय बना। जीव विज्ञान तथा ज्ञान मीमांसा के संयुक्त अध्ययन ने इनके शोध के दायरे को प्रभावित किया। पियाजे इस सवाल का वैज्ञानिक अध्ययन करना चाहते थे कि 'ज्ञान कैसे होता है'। (मेकनैली. 2) पियाजे ज्ञान के होने के कारणों को समझना चाहते थे। वे ज्ञान की व्याख्या इसके बनने तथा विकसित होने की प्रक्रिया को केन्द्र में रखकर करने की कोशिश करना चाहते थे। वे ज्ञान के बनने तथा उसके विकसित होने की प्रक्रिया को समझना चाहते थे। उन्होंने ज्ञान की प्रचलित धारणाओं को संदेह की दृष्टि से देखा। ये धारणाएँ ज्ञान को तथ्यों तथा विचारों के समकक्ष मानती थीं तथा बुद्धि को IQ के। पियाजे की ज्ञान संबंधी धारणा को समझने के लिए उनके जीवन-संबंधी विश्वासों को समझना आवश्यक है। उनका विश्वास था कि घटनाओं के मध्य सार्वभौमिक व्यवस्था होती है। इसी व्यवस्था के कारण घटनाएँ आपस में संबंधित रहती हैं। सार्वभौमिक से मतलब है ऐसी व्यवस्था या नियम जो समान स्थितियों में सभी जगह लागू होता है। वे जीववैज्ञानिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक प्रणालियों को संबंधित मानते हैं तथा तर्क को इनके मध्य जुड़ाव का कारण मानते हैं। (वही)। वे मानते हैं कि भौतिक दुनिया, जीववैज्ञानिक प्रक्रियाओं तथा मस्तिष्क की प्रक्रियाओं को चलाने वाले नियमों का तर्क एक सा है। इसी आधर पर पियाजे बुद्धि को जीववैज्ञानिक

*शिक्षा शास्त्र विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110 007

समायोजन (Biological adaptation) का विस्तार मानते हैं। उनके अनुसार विकास बुद्धि का कार्य उसी प्रकार है जैसे पाचन एक जीववैज्ञानिक कार्य है। तार्किक विकास के कारण ही बच्चा जीववैज्ञानिक, भौतिक, तथा समाजिक दुनिया को समझने में सक्षम होता है। पियाजे का सबसे मुख्य सरोकार यह समझाना था कि बच्चे में बुद्धि के विकास का अर्थ अधिक जटिल तथा प्रभावी तार्किक प्रणालियों का उपयोग करने की क्षमता का विकास है। यानि, यदि बच्चे बढ़ते हुए क्रम में जटिल से जटिलतर तार्किक प्रणालियों का उपयोग करना सीखते हैं तो यह उसके बौद्धिक रूप से विकसित होने का सबूत तथा लक्षण है। पियाजे सार्वभौमिक नियमों को खोजना चाहते थे इसीलिए उन्होंने व्यक्ति को व्यक्ति के तौर पर नहीं देखा। बल्कि सार्वभौमिक सत्य का अंग मानकर व्यक्तियों का अध्ययन किया। उनका विश्वास था कि व्यक्तियों के अध्ययन से सभी मनुष्यों में समान प्रक्रियाओं को खोजा जा सकता है। वे ज्ञान के बनने तथा विकसित होने को भी इसी नजर से देखते थे कि कुछ व्यक्तियों में ज्ञान के विकसित होने की प्रक्रिया को इस तरह से समझा जा सकता है जिसके आधार पर तमाम इंसानों में घटित होने वाली ज्ञान संबंधी प्रक्रियाओं को व्याख्यायित किया जा सके।

पियाजे बुद्धि के विकास को विकासवाद की नजर से देखते थे। उनके अनुसार बुद्धि का विकास ताउम्र विशेष प्रकार से होता है। जिसमें वर्तमान विकास, पुनर्विकास के विस्तार के रूप में होता है। यानि बुद्धि संबंधी कोई प्रक्रिया एकाएक घटित नहीं होती। बुद्धि संबंधी घटनाओं में निहित तर्क व्यक्ति के जीवन के पहले चरणों में घटित घटनाओं में निहित तर्कों का विस्तार होता है।

पियाजे का मानना है कि मानसिक विकास जन्मजात कारकों से निर्धारित नहीं होता। यह जीववैज्ञानिक सिद्धांतों के अनुसार परिपक्व होते जीव तथा वातावरण के मध्य अन्त:क्रिया का परिणाम होता है। यानि, समझदारी के विकास का एक आधार वातावरण है। इंसानी व्यवहार में अनुवांशिक तौर पर प्राप्त लक्षण अत्यन्त सीमित होते हैं। इंसानी व्यवहार मुख्यत: अनुवांशिकी तथा वातावरण के बीच होने वाली जटिल अन्त:क्रिया का परिणाम होता है। अगर इंसानी शिशु बने-बनाए व्यवहार को अनुवांशिक तौर पर नहीं लाता तब यह अनुवांशिक तौर पर क्या लाता है जो उसे एक जटिल जीव बनाता है? ऐसा जीव जो परिपक्व होने पर अमूर्त तथा जटिल समस्याओं को हल कर लेता है। जन्म के समय इंसानी बच्चे में अनेक प्रकार की सहजवृत्तियाँ होती हैं। जैसे पकड़ना, चूसना

इत्यादि। ये जन्मजात गुण वातावरण के साथ अन्त:क्रिया के दौरान संशोधित होते हैं यानि अधिक विकसित होते जाते हैं। जैसे-जैसे अनुभव होता है सहज वृतियाँ सुधारती जाती हैं। वातावरण द्वारा प्रस्तुत चुनौतियों के अनुसार शिशु अपने व्यवहार को अनुकूलित करता है। यानि, बच्चा वातावरण के अनुकूल व्यवहार करने का प्रयास करता है। अनुकूलन करने की क्षमता सभी इंसानों में पाई जाती है। पियाजे के अनुसार वातावरण के प्रति अनुकूलन एक बुनियादी सिद्धांत है जो बच्चों के बौद्धिक विकास की व्याख्या करता है। प्राणी अपने वातावरण के अनुसार व्यवहार करने का प्रयास करता है। अधिकांश प्राणियों में व्यवहार का निर्धारण उनके अनुवांशिक गुणों के द्वारा ही होता है और वहीं तक सीमित रहता है। इंसान अनुवांशिक रूप से प्राप्त गुणों से निर्धारित होने वाले व्यवहारों को संशोधित करता रहता है। इस प्रक्रिया में उसके व्यवहारों में जटिलता आती है। अनेक प्रकार के अनुकूलित व्यवहार परस्पर समन्वय के साथ भी काम करते हैं। यानि शिशुओं में पकड़ने तथा चूसने संबंधी सहजवृतियों पर आधारित व्यवहारों की श्रृंखला एक दूसरे को बेहतर बनाने में मदद करती है। एक प्रकार के अनुकूलन के दौरान अर्जित अनुभव अन्य प्रकार के अनुकूलन में मदद करते हैं। पियाजे का विश्वास है कि जीववैज्ञानिक गतिविधियाँ एक दूसरे को मदद करती हैं तथा परस्पर सहयोग करती हैं। पियाजे का यह विश्वास भी है कि बौद्धिक गतिविधियाँ, जीववैज्ञानिक गतिविधियों का ही एक रूप है इसलिए ये बातें उन पर भी लागू होती हैं। (वही. 5)।

पियाजे का मानना है कि हमें अनुवांशिक रूप से बौद्धिक कार्य करने का तरीका मिला हुआ होता है। यह तरीका वातावरण के साथ अन्त:क्रिया करता हुआ बौद्धिक संरचना का रूप लेता जाता है। यह संरचना वातावरण से निपटने में बच्चे की मदद करती है। अलग-अलग उम्र में इन बौद्धिक संरचनाओं में गुणात्मक अन्तर होता है। यानि वातावरण द्वारा पेश की गई चुनौतियों से निपटने में 2 साल के बच्चे द्वारा अपनाए गए तरीके तथा 8 साल के बच्चे द्वारा अपनाए गए तरीके में गुणात्मक अन्तर होता है। ऐसा मानने पर भी पियाजे का विश्वास है कि बौद्धिक कार्यों के मूलभूत गुणों में परिवर्तन नहीं होता। बुद्धि के वे कौन से कार्य हैं जो उम्र बढ़ने के साथ नहीं बदलते? ऐसे दो कार्य हैं- अनुकूलन (Adaptation) तथा संगठन (organization)। ये कार्य परस्पर पूरक होते हैं। इन स्वयं सिद्ध (self- evident) कार्यों को पियाजे स्थायी कार्य (Functional Invariants) का नाम देते हैं।

यह बात पहले ही कही जा चुकी है कि बौद्धिक संरचना के आधार पर बच्चा अपने वातावरण में घटने वाली घटनाओं की व्याख्या करता है तथा वातावरण द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली चुनौतियों का सामना करता है। संरचनाएँ देखी नहीं जा सकतीं लेकिन व्यवहार के आधार पर उनके स्वरूप के बारे में निष्कर्ष निकाला जा सकता है। इसी आधार पर कहा जा सकता है कि एक साल तथा पाँच साल के बच्चे की बौद्धिक संरचनाएँ भिन्न होती हैं। क्योंकि वातावरण की व्याख्या तथा उसके द्वारा प्रस्तुत चुनौतियों से निपटने की उनकी रणनीतियों में दिखने वाले व्यवहार भिन्न होते हैं। एक बच्चा जो अपने तमाम प्रयासों में समन्वय के आधार पर केवल अपना हाथ अपने मुँह में ले जाता है उसकी बौद्धिक संरचना उस बच्चे से कम विकसित है जो किसी खिलौने को देखता है, उसे चाहता है, उसकी तरफ बढ़ता है तथा उसकी राह में आने वाली बाधाओं को जीत लेता है। (वही. 6)।

पियाजे मानते हैं कि बच्चे के व्यवहार में बौद्धिक संरचनाओं के विभिन्न पक्ष मिलजुलकर काम करते हैं। इन परस्पर संबद्ध पक्षों को पियाजे स्कीमाज का नाम देते हैं। बौद्धिक संरचना का अर्थ है वे संरचनाएँ जिनके आधार पर वातावरण से मिलने वाली जानकारी को ग्रहण किया जाता है, कल्पना की जाती है, तर्क किया जाता है तथा निष्कर्ष निकाला जाता है।

पियाजे ने 'Schemas' का उपयोग 'Schemata' के विकल्प के तौर पर किया। बाद के लेखन में उन्होंने छवियों के संगठन के लिए 'Schema' तथा क्रियाओं के संगठन के लिए 'Scheme' शब्दों का उपयोग किया है। (वही. 6)।

किसी दो महीने के बच्चे को कोई भी चीज दो वह उसे मुँह में डालेगा क्योंकि इस उम्र में उपलब्ध 'स्कीमा' उस चीज के प्रति ऐसा कर पाने तक ही सीमित है। यानि स्कीमा व्यवहार के हदों को तय करता है। कोई दो साल की बच्ची उसी चीज के साथ भिन्न किस्म का व्यवहार करेगी क्योंकि उसका 'स्कीमा' भिन्न है। एक ही तरह की वस्तु के प्रति दो महीने तथा दो साल के बच्चे के व्यवहारों का अन्तर यह बताता है कि दो साल के बच्चे में वही व्यवहार संशोधित हो गया है। बौद्धिक संरचनाएँ, जिन्हें पियाजे ने 'स्कीमाज' कहा है, बदलती रहती हैं। जैसे-जैसे वातावरण के साथ अन्तःक्रियाएँ बढ़ती हैं, बौद्धिक संरचनाएँ अधिक जटिल होकर सामान्यीकरण की तरफ बढ़ती हैं।

अनुकूलन जो आनुवांशिक रूप से उपलब्ध स्थाई कार्य है, के दो पूरक पक्ष होते हैं– आत्मसातीकरण Assimilation तथा समायोजन (Accommodation)। जब अनुकूलन की बात होती है तो उसमें ये दोनों पक्ष शामिल रहते हैं। लेकिन उनका अनुपात भिन्न हो सकता है। यदि बच्चा नकल उतारता है तो इस अनुकूलन में समायोजन की मात्रा अधिक होती है। यदि बच्चा खेल रहा है तो इस अनुकूलन में आत्मसातीकरण की मात्रा अधिक होती है। अनुकूलन के दौरान बच्चा हमेशा सक्रिय रहता है तथा अपनी क्रियाओं के द्वारा वातावरण की व्याख्या करता है। यह बात मानसिक गतिविधियों के मामले में भी लागू होती है। जब बच्चा किसी स्थिति में पड़ता है तो वह उपलब्ध बौद्धिक संरचना के आध ाार पर उसे आत्मसात (Assimilate) करता है। यदि स्थिति में कुछ नई या अपरिचित बातें होती हैं तो वह इन बातों को समायोजित (Accomodate) करके अपने व्यवहार को इस प्रकार परिवर्तित करता है कि स्थिति के साथ सामंजस्य स्थापित हो सके। नई तथा पूर्व स्थितियों में सामंजस्य बनाने की प्रक्रिया को पियाजे Equilibration का नाम देते हैं जो संतुलन (Equilibrium) की तरफ ले जाती हैं। पियाजे के अनुसार 'प्रत्येक व्यवहार आन्तरिक तथा बाह्य कारकों या, अधिाक सामान्य तरीके से कहें तो Assimilation तथा Accomodation के बीच संतुलन सुनिश्चित करने की तरफ बढ़ता है।' एक स्थिति का संतुलन दूसरी के लिए असंतुलन बन जाता है। यह लगातार चलने वाली प्रक्रिया बौद्धिक विकास का प्रमुख कारण है।

दो साल की उम्र से बच्चे की बौद्धिक संरचना में 'सांकेतिक कार्य' (Symbolic function) के कारण महत्वपूर्ण परिवर्तन होने लगता है। बच्चा मानसिक छवियाँ तथा सांकेतिक भंगिमा (Symbolic gesture) बनाने के साथ–साथ भाषा का उपयोग करना सीखने लगता है। 'सांकेतिक कार्य' मानसिक छवियाँ बनाने, खेलने, ड्राईंग बनाने तथा भाषा का उपयोग करने में प्रकट होते हैं। इस उम्र से पहले भी बच्चा शब्दों का उपयोग करता है। लेकिन शब्दों को संकेत के रूप में उपयोग करने संबंधी 'स्कीमा' का विकास दो साल की उम्र से शुरु होता है। इस उम्र में वह ऐसे वाक्य बनाने लगता है जिनमें एक से ज्यादा शब्दों का उपयोग होता है। वह व्याकरणिक नियमों को भी समझने लगता है। अब बच्चा इंद्रिय क्रियाओं से भी तेज क्रिया कर सकता है। वह तात्कालिक घटनाओं से परे जाकर उन पर बात कर सकता है। व्यवहार करने के लिए उसे वातावरण के तात्कालिक पक्ष तक सीमित नहीं रहना पड़ता। भाषा की वजह से उसके दिक् तथा काल (Time and space) की सीमाओं का विस्तार होता है। अब उसके पास ऐसे 'स्कीमाज' होते हैं जो उसे

इस समय तथा इस स्थान पर मौजूद घटनाओं के साथ-साथ अन्य समय में घटी-घटनाओं को ध्यान में रखकर व्यवहार करने में भी सक्षम बनाते हैं। भाषा का उपयोग सामाजिक जीवन को विस्तार देने तथा उसके प्रतीकीकरण हेतु किया जाने लगता है।

भाषा के विकास के संदर्भ में पियाजे का विश्वास है कि विकास की औपचारिक अवस्था (Formal Stage) से पहले तक भाषा का स्वतंत्र उपयोग नहीं होता। इससे पहले तक भाषा तमाम सांकेतिक कार्यों (Symbolic functions) के साथ मिलकर काम करती है। इस अवस्था से पहले क्रियाओं के कारण भाषा का विकास होता है। जब बच्चा वस्तुओं तथा घटनाओं का रूपांतरण करके उन्हें आत्मसात (Assimilate) किए जा सकने वाले रूप में ढालता है तो इस प्रक्रिया में उसकी भाषा विकसित होती है। (वही. 141)। इस ढालने की प्रक्रिया को पियाजे "Operative Knowing" कहते हैं। (वही. 66)। इस प्रक्रिया में 'स्कीमाज' बनते बिगड़ते हैं। जिनकी वजह से भाषा का विकास होता है। पियाजे के अनुसार बौद्धिक-संरचनाओं के बनने के लिए आत्मसातीकरण तथा समायोजन की संकल्पनाओं के सक्रिय होने के कारण भाषा का विकास होता है।

प्राथमिक कक्षाओं में भाषा-शिक्षण हेतु सबक

1. भाषा का विकास शारीरिक सक्रियता के बाद तथा उसका परिणाम होता है। इसलिए ऐसे अवसर उपलध करवाए जाने चाहिए जिसमें बच्चे अपने 'स्कीमाज' का उपयोग कर सकें।
2. 'स्कीमाज' के असंतुलित होने के अवसर हों। यानि बच्चे जो जानते हैं उससे भिन्न वातावरण प्रस्तुत करने वाली वस्तुएँ एवं विचार उनके सामने रखे जाएँ। ताकि उन्हें कुछ संघर्ष करना पड़े। इस प्रकार के संघर्ष के कारण उनकी भाषा का विकास होगा।
3. लिखने तथा पढ़ने की कुशलताओं के विकास की बजाए सोचने में मदद करने वाले अवसर दिए जाने चाहिए। प्रारंभ में लिखने तथा पढ़ने को अनिवार्य न करके ऐच्छिक किया जाए। इनके स्थान पर नए-नए 'स्कीमाज' बनाने वाले अनुभव उपलब्ध करवाए जाएँ।

अध्ययन : बच्चे भाषा का उपयोग क्यों करते हैं ?

1926 में पहली बार अंग्रेजी में प्रकाशित पुस्तक 'The Language and Thought of the child' में दर्ज़ एक अध्ययन— The Functions of Language in Two children of Six में

पियाजे ने बच्चों द्वारा भाषा से लिए जाने वाले कार्यों को श्रेणीबद्ध किया है। पियाजे इस प्रश्न पर विचार कर रहे थे कि भाषा के द्वारा बच्चा अपनी किन जरुरतों को पूरा करता है? इस अध्ययन का महत्व दो रूपों में स्पष्ट है। एक इसकी पद्धति तथा दूसरा इसके निष्कर्षों के रूप में। पियाजे तथा उनके एक साथी ने एक स्कूल के 6-7 साल के एक-एक बच्चे (लड़के) का एक महीने तक स्कूल में अवलोकन किया। उन्होंने बच्चों द्वारा कही जाने वाली हर बात का संदर्भ सहित विस्तृत विवरण लिखा। बच्चे अपनी तमाम गतिविधियों को पूरी स्वतंत्रता के साथ करते। वे अपनी इच्छा से अकेले या समूह में काम करते। वे एक समूह को छोडकर, दूसरे समूह का हिस्सा बन जाते। वे जब चाहें एक कमरे से दूसरे कमरे में चले जाते। अध्ययनकर्ताओं ने स्कूल का उपयोग बच्चों की भाषा से जुड़े सवालों का जवाब तलाशने हेतु फील्ड के रूप में किया।

जिस बच्चे ने जो वाक्य बोला उस वाक्य को एक संख्या से दर्शा दिया गया। यदि किसी बात को कहने में उसने एक से अधिक वाक्यों का प्रयोग किया तो उन सभी वाक्यों को एक बात माना गया तथा किसी एक संख्या से दर्शाया गया। यानि पहले बच्चे द्वारा बोले गए पहले वाक्य को 1 से दर्शाया गया। उसके द्वारा बोले गए दूसरे वाक्य को 2 से दर्शाया गया। ऐसा करके अध्ययनकर्ताओं ने बच्चों द्वारा भाषा से लिए जाने वाले कामों को श्रेणीबद्ध करने में मदद ली।

प्रस्तुत शोध में बच्चों के गहन और लंबे अवलोकन करने पर मिली सूचनाओं के विश्लेषण के आधार पर उन्होंने बच्चों की वाणी को दो श्रेणियों में बाँटा। (पियाजे. 1926. 9) ये इस प्रकार हैं:

1. अह्म केंद्रित तथा,
2. सामाजीकृत

पियाजे ने अहम् केंद्रित भाषा की निम्न विशेषताओं को रेखांकित किया है:

1. इस प्रकार की वाणी में बच्चा इस बात पर विचार नहीं करता है कि वह किससे बात कर रहा है।
2. उसे इस बात की भी चिंता नहीं होती कि उसे सुनने वाला कोई है या नहीं।
3. बच्चा स्वयं के लिए बात करता है।
4. बच्चा बात कहते हुए सुनने वाले की सोच का ख्याल नहीं रखता।

पियाजे ने अहम केंद्रित वाणी को तीन उप-श्रेणियों में विभाजित किया है। (वही)।

1. **दोहराव (Repetition) :** बच्चे के पास जो शब्द उपलब्ध होते हैं वह उन्हें दोहराने में आनन्द का अनुभव करता है।
2. **एकालाप (Monologue) :** बच्चा स्वयं से इस प्रकार बात करता है मानो आवाज सोच रहा हो। वह किसी और को संबोधित नहीं करता।
3. **सामूहिक एकालाप (Dual or collective Monologue) :** इस उप-श्रेणी में आन्तरिक विरोधाभास लग रहा है। इस प्रकार की अह्म केंद्रित भाषा का मतलब है कि बच्चे आपस में बात कर रहे हैं लेकिन एक-दूसरे को न तो समझ रहे हैं और न ही दूसरों की तरफ ध्यान दे रहे हैं।

पियाजे ने सामाजीकृत भाषा को पाँच उप-श्रेणियों में बाँटा है : (वही. 9-11)।

4. **अनुकूलित सूचना (Adapted Information) :** बच्चा दूसरों के साथ विचारों का आदान-प्रदान करता है। ऐसा तभी होता है जब बच्चा सुनने वाले के विचारों को ध्यान में रखता है। यह 'सामूहिक एकालाप' से भिन्न परिघटना है।
5. **आलोचना (Criticism) :** इसमें वे तमाम टिप्पणियाँ शामिल होती हैं जो दूसरों के काम या व्यवहार के बारे में की जाती हैं। ये टिप्पणियाँ अपनी तुलना में दूसरों को कमत्तर सिद्ध करने हेतु की जाती है।
6. **आदेश, आग्रह तथा, धमकियाँ (Commands, Request and Threats) :** इनके दौरान बच्चों में परस्पर निश्चित अन्त:क्रिया होती है।
7. **प्रश्न (Questions) :** पियाजे ने पाया कि अधिकांश प्रश्न उत्तर पाने की इच्छा से किए जाते हैं। इसलिए उन्होंने 'प्रश्न' को सामाजीकृत वाणी के तहत रखा है।
8. **उतर (Answer):** उत्तर से अभिप्राय वास्तविक प्रश्नों (प्रश्नवाचक चिन्ह के साथ) तथा आदेशों के प्रति जवाब से है।

इस अध्ययन में पियाजे ने पाया कि 6-7 साल की उम्र के बच्चे भाषा का उपयोग आठ प्रकार की जरुरतों को संतुष्ट करने के लिए करते हैं।

पारिभाषिक शब्दावली

स्कीमाज : किसी काम को करने के लिए उपलब्ध मानसिक संरचनाएँ।

आत्मसातीकरण : उपलब्ध मानसिक संरचनाओं के अनुसार वातावरण के प्रति प्रतिक्रिया करना। आत्मसातीकरण मानसिक संरचनाओं तथा वातावरण में संगतता बैठाने का नाम है।

समायोजन : नए अनुभवों के परिणामस्वरूप मानसिक संरचानाओं में संशोधन। इसी के कारण सीखना संभव होता है।

संतुलन : प्राणी तथा वातावरण के बीच संतुलन स्थापित करने की सहज प्रवृत्ति। नई स्थितियों में स्कीमाज बदलने लगते हैं, यह असंतुलन है। लेकिन स्कीमाज को वातावरण के अनुसार बना लेना संतुलन है।

स्थाई कार्य : वे प्रक्रियाएँ जिनका अस्तित्व पियाजे द्वारा बताई गई चारों अवस्थाओं में रहता है। समायोजन, आत्सातीकरण, संगठन, संतुलन आदि 'स्थाई कार्य हैं।'

औपचारिक अवस्था : वह अवस्था जिसमें बच्चे प्रत्यक्ष अनुभवों के साथ-साथ परिकल्पनात्मक बातों पर तार्किक विचार करने लगते हैं।

संदर्भ

मैकनली, डी.डब्ल्यु. पियाजे, (1973): *एजुकेशन एंड टीचिंग,* ऐंगस एंड रार्बटशन प्रा. लि. सिडनी

पियाजे, जीन, (1926): द *लेंग्वेज़ एंड थॉट आफ द चाइल्ड,* रूटलेज – केगन पॉल लि. लन्दन